www.thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 29 दिसम्बर 2013 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 29 दिसम्बर 2013 से 04 जनवरी 2014

पौष कृ.–12 ● वि० सं०–2070 ● वर्ष 78, अंक 88, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,114 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

प्रादेशिक बिहार अखिल भारतीय सोनपुर मेला में किया वेद प्रचार

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, बिहार के तत्त्वाधान में अखिल भारतीय पशु मेला, सोनपुर, सारण (बिहार) स्थित आर्य समाज के प्रांगण में छः दिवसीय वेद प्रचार महोत्सव के धूमधाम से मनाया गया।

उदघाटन के अवसर पर डॉ. यू. एस. प्रसाद के साथ डॉ. जयंत वी. कुलकर्णी (क्षेत्रीय निदेशक) श्री एस. के झा (क्षेत्रीय निदेशक) बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, तथा अनेक डी.ए.वी. पब्लिक स्कूलों के प्राचार्यगण और आर्य समाज के सैकड़ों कार्यकर्त्ताओं ने यज्ञ में भाग लिया। ओ३म् ध्वजारोहण कर उत्सव का विधिवत शुभारंभ किया गया।

इस मेले में सभी धर्मावलम्बी अपने मत का प्रचार–प्रसार धूमधाम से करते हैं।

लाखों सैलानी, इस विश्व मेले में सम्मिलित होते हैं। इस अवसर पर आर्य समाज द्वारा वेद–प्रचार, यज्ञ–हवन, भजन–प्रवचन आदि कार्यक्रम का आयोजन किया गया। भव्य पंडाल, आकर्षक सुविचार, ओ३म् ध्वज, ओ३म् पताका, जल वितरण, अतिथियों की ठहरने की सुविधा, ऋषि लंगर तथा सुसज्जित वेद–प्रचार रथ द्वारा उपदेशक मधुर एवं सरल क्षेत्रीय भाषा में वैदिक सिद्धांतों का प्रचार कर रहे थे।

प्रतिदिन प्रभातफेरी, यज्ञ–हवन, भजन–प्रवचन एवं शंका–समाधान का कार्यक्रम चलता था। इस महोत्सव में अनेक संन्यासियों, वैदिक विद्वानों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया तथा वैदिक विचारों से लोगों को लाभान्वित किया। इस महोत्सव में जिला आर्य सभा, वैशाली के अधिकारियों का विशेष सहयोग रहा।

यज्ञ की पूर्णाहुति तथा ध्वज अवतरण कर शांन्ति एवं जयघोष के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

आर्य जगत् के सभी पाठकों को नव वर्ष – 2014 की हार्दिक शुभकामनाएं

डी.ए.वी. शोलापुर में हुआ महात्मा आनंद स्वामी छात्रावास का उद्घाटन

डी.जी.बी. दयानंद विधि महाविद्यालय शोलापुर की छात्राओं के लिए नवनिर्मित 'महात्मा आनंद स्वामी छात्रावास' का उद्घाटन केंद्रीय गृहमंत्री श्री. सुशीलकुमार शिंदे जी की सुपुत्री कु. प्रणितीताई शिंदे जी विधायक महाराष्ट्र राज्य, के करकमलों से उत्साहपूर्ण वातावरण में संपन्न हुआ। संस्था के स्थानीय सचिव डॉ. वी.के. शर्मा जी अध्यक्ष पद पर आसीन थे। समारोह का शुभारंभ देवयज्ञ से किया गया। इस यज्ञ का पौरोहित्य श्री. जे.बी. आर्य ने किया।

प्रणितीताई शिंदे जी ने छात्राओं को संबोधित करते हुए कहा कि–दयानंद शिक्षण संस्था देश एवं विदेश में एक अग्रसर शिक्षण संस्था है। इस संस्था का उद्देश्य संस्कारशील एवं चरित्रवान छात्रों का निर्माण करना है। यह शिक्षण संस्था ज्ञान दान का पुनीत कर्म करते हुए संस्कृति की रक्षा के लिए सक्षम है।'' इस अवसर पर संस्था के स्थानीय सचिव डॉ. वी.के.शर्मा जी ने विधायक कु. प्रणितीताई शिंदे जी के विनम्र स्वभाव की और उनके सामाजिक योगदान की प्रशंसा की और कहा कि – ''इस छात्रावास का उद्घाटन 'संविधान दिन' के उपलक्ष्य में हो रहा है, यह एक सुयोग ही है। दयानंद शिक्षण संस्था समय के साथ चलनेवाली संस्था है। आगे चलकर आधुनिक शिक्षा–पद्धति के अनुसार नए–नए पाठ्यक्रम शुरू करने का संकल्प है।''

उद्घाटन समारोह के इस शुभ अवसर पर मंच पर अनेक विद्वान और गणमान्य अतिथियों के अतिरिक्त संस्थाओं के प्राचार्य अध्यापक तथा कर्मचारी उपस्थित थे।

समारोह का समापन छात्रावास के अधीक्षक डॉ. जी.एस. शहाणे के आभार ज्ञापन से हुआ।

बी.बी.के. डी.ए.वी. अमृतसर में दुबई से आए परिवार ने किया हवन यज्ञ

बी.बी.के. डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल में श्रीमान एवं श्रीमती कमल मेहरा जी ने दुबई से आकर अपना जन्मोत्सव, हवन अनुष्टान के आयोजन द्वारा मैडम नीना बत्तरा जी की अध्यक्षता में सम्पन्न करवाया। इस हवन अनुष्ठान समारोह में श्री सुरेन्द्र मेहरा जी, बी.बी.के. डी.ए.वी. कॉलेज की प्रिंसीपल डॉ. नीलम कामरा, स्कूल के मैनेजर डॉ. के. एन. कौल, प्रिंसीपल मैडम नीरा शर्मा जी ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। इसके अतिरिक्त श्री हीरा लाल कन्धारी जी, श्री दिनेश आर्य, श्री नैनीष जी भी हवन अनुष्ठान में मौजूद थे। अपने जन्म–दिन की खुशी के अवसर पर श्रीमान् कमल मेहरा जी ने बच्चों को उनकी आवश्यकता के अनुसार 100 जोड़ी जूते, 300 जोड़ी जुराबें एवं स्वैटर उपहार के रूप में प्रदान किये। उन्होंने उन पन्द्रह बच्चों को भी उपहार भेंट किये जिनका जन्म–दिन नवम्बर के माह में होता है। मैनेजर डॉ. के. एन. कौल जी ने 1100/– रूपये की धन राशि अपने जन्म दिन के उपलक्ष्य में स्कूल को भेंट स्वरूप दी। सभी अध्यापकगणों ने अपना पूर्ण रूप से सहयोग दिया। श्रीमती नीना बत्तरा ने आए हुए अतिथियों का धन्यवाद किया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 29 दिसम्बर, 2013 से 04 जनवरी, 2014

अविवेकी जन डूब जाते हैं

● **डॉ. रामनाथ वेदालंकार**

भि वेना अनूषत, इयक्षन्ति प्रचेतसः।
मज्जन्त्यविचेतसः।।

ऋग् ९.६४.२१

ऋषिः **काश्यपः**। देवता **पवमानः सोमः**। छन्दः **गायत्री**।

● (**वेनाः**) प्रभु–प्रेमी मेधावी जन, (**अभि अनूषत**) अभिमुख होकर (पवमान सोम प्रभु की) स्तुति करते हैं। (**प्रचेतसः**) प्रकृष्ट चित्तवाले विवेकी जन, (**इयक्षन्ति**) यज्ञ करने का संकल्प करते हैं। (**अविचेतसः**) अविवेकी जन, (**मज्जन्ति**) डूब जाते हैं।

● सोम प्रभु पवमान हैं, जग को पवित्र करने वाले हैं। जो मलिनता संसार में कई कारणों से उत्पन्न होती है उसे विविध साधनों से पवित्र करनेवाले सोम प्रभु यदि न होते तो मलिनता इतनी बढ़ जाती कि प्राणियों का जीवित रहना कठिन हो जाता। वे मानव के हृदय को भी पवित्र करनेवाले हैं, परन्तु उन्हीं के हृदय को पवित्र कर सकते हैं जो अपना हृदय पवित्र होने के लिए उन्हें देते हैं। प्रभु–प्रेमी मेधावी जन सोम प्रभु के अभिमुख हो उनके प्रति प्रणत होते हैं, उनकी स्तुति करते हैं, उनकी पावनता का गुणगान करते हैं, उन्हें आत्म–समर्पण करते हैं। परिणामतः वे 'प्रचेताः' बन जाते हैं, उनका चित्त प्रकृष्ट, पवित्र, ज्ञानमय और विवेकयुक्त हो जाता है। 'प्रचेताः' मनुष्य दीर्घद्रष्टा होते हैं। जिस यज्ञ को अन्य लोग निरर्थक समझते हैं, उन्हें वही प्यारा होता है। वह अपने जीवन में यज्ञ करने का संकल्प लेते हैं। वे सोम–यज्ञ करते हैं, सोम प्रभु के नाम से यज्ञ में आहुतियाँ डालते हैं, 'सोम' प्रभु का भजन–कीर्तन करते हैं और उससे प्रेरणा पाकर स्वयं भी साक्षात् 'सोम' बन जाते हैं। उनके जीवन में सोम–सदृश रसमयता, मधुरता और पावनता आ जाती है। 'सोम' के आदर्श को अपने सम्मुख रखते हुए वे अन्य यज्ञों का भी आयोजन करते हैं। 'सोम' प्रभु पावनता के यज्ञ को चला रहे हैं, वे भी समाज को पावन करते हैं। 'सोम' प्रभु सृष्टि–यज्ञ चला रहे हैं, वे भी सर्जनात्मक कार्यों को करते हैं। 'सोम' प्रभु पालन–पोषण और पूर्ति का यज्ञ कर रहे हैं, वे भी निर्बलों का पालन करते हैं, अपुष्टों को पुष्टि देते हैं, अपूर्णों के दोषों को दूर कर उनके छिद्र भरते हैं। यज्ञमयी नौका पर चढ़कर वे भव–सागर से पार हो जाते हैं। परन्तु जो 'अविचेताः' हैं, अविवेकी हैं, अल्पदर्शी हैं, वे न 'सोम' प्रभु का स्तवन करते हैं, न यज्ञ करते हैं। परिणामतः वे भव–सागर में डूब जाते हैं और दुर्गति पाते हैं। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्व-ज्ञान

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

स्वार्थमय संसार में प्रवृत्तिमार्ग के तीन प्रकार के यात्री और तीन प्रकार के स्वार्थ हैं– उत्कृष्ट, मध्यम और निकृष्ट, यह प्रसंग चल रहा था। इससे आगे बढ़कर कठोपनिषद् का सन्दर्भ देकर 'श्रेय और प्रेय' इन दो मार्गों की बात की । प्रेय मार्ग की निरर्थकता सोलोमन के जीवन और राजा याति के उदाहरण से सिद्ध करके यह कहा कि श्रेय मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति का अन्तरात्मा भी उसका उत्साह बढ़ाता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कहा कि प्रत्येक मनुष्य को परमात्मा अपना आदेश देता है, जो इसे सुन लेता है वह बच जाता है। महात्मा आनन्द स्वामी जी ने आगे प्रश्न उठाया कि निकृष्ट स्वार्थ की ओर मनुष्य झुकता ही क्यों है? काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आए कहाँ से? कठोपनिषद् और गीता के आधार पर इन प्रश्नों का उत्तर दिया और कहा प्रभु मिलन की यदि चाह है तो श्रेय मार्ग पर ही चलना होगा या उत्कृष्ट–प्रेय मार्ग पर। इसके लिए जीवन में प्रतिदिन आने वाली घटनाओं को देखकर उनके श्रेय और प्रेय दोनों भागों को यथार्थ रूप से जानना होगा।

आयुर्वेद में शरीर तथा मन के दोषों का वर्णन हुआ है और उन दोषों के प्रशमन का उपाय भी बताया गया है। सुश्रुत के आधार पर ''कर्म पुरुष'' के 16 गुण बताकर सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण, प्रधान मन के गुण बताये।

अब आगे

सृष्टि–तत्व

पश्चिमी विद्वान आज तक संसार के जितने तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं और उनके द्वारा उन्होंने जो आविष्कार किए हैं, उनने संसारी लोगों के दुःख में भले ही वृद्धि हो गई हो, सुख में तो हुई नहीं। हाँ, एक अंश तक इन आविष्कारों से मनुष्य–शरीर को कुछ सुविधाएँ अवश्य मिल गई हैं, परन्तु देखने में यह आ रहा है कि पश्चिम, पूर्व,सभी दिशाओं के देशवासियों की चिन्ता, वेदना तथा अशान्ति निरन्तर बढ़ती ही चली जा रही है।

एक ग्रामीण की बात

पश्चिम के एक योग्य वैज्ञानिक मैक्सिम गोर्की (Maxim Gorky) एक ग्राम की जनता के समक्ष विज्ञान (Science) के आविष्कारों का महत्त्व प्रकट कर रहे थे। एक ग्रामीण ने उठकर कहा–''हाँ, हम आकाश में पक्षियों की भाँति उड़ना तो सीख गए, बड़े–बड़े सागरों में मीनवत् तैरना भी जान गए परन्तु इस पृथिवी पर हमें कैसा जीवन व्यतीत करना चाहिए, यह हम अभी तक सीख नहीं सके।'' सीधे–सादे ग्रामीण के सत्य वचन को सुनकर मैक्सिम गोर्की निरुत्तर हो गए। यूरोप के दूसरे विद्वान एच. लेवी (H.Lavi) ने नेचर में यह लिखा है कि :

''इस बात पर बहुत अभिमान किया जाता है कि आधुनिक काल के विज्ञान ने मनुष्य को प्रकृति पर असाधारण शक्तियाँ प्रदान कर दी हैं; परन्तु यदि प्रकृति में मनुष्य भी सम्मिलित है तो वह अभिमान टूट जाता है क्योंकि इस मनुष्य द्वारा आज भूख, दरिद्रता, युद्ध तथा वैमनस्य के जो दृश्य देखे जा रहे हैं, ये इस अभिमान को रहने नहीं देते।''

विकास का ह्रास

चार्ल्स डार्विन ने तो यह बतलाया था कि यह संसार क्रमशः उन्नति करता चला जा रहा है। यह मनुष्य पहले ही मनुष्य नहीं बन गया अपितु कितनी ही प्रारम्भिक अवस्थाओं (निर्जीव से जीव, जीव से फिर बड़ा जीव, फिर लंगूर) में धीरे–धीरे विकसित होता चला जा रहा है, परन्तु देखने में यह आ रहा है कि यह उल्टा विनाश अथवा ह्रास हो रहा है। मनुष्य अपने मनुष्यतत्व ही से पतित होने लगा है। इसका मुख्य कारण यही है कि प्रारम्भ के पश्चिमी वैज्ञानिकों ने केवल प्रकृति (Matter) तथा गति (Energy) ही को सब–कुछ स्वीकार कर लिया और वे आत्मा से बहुत दूर चले गए। पर सारे

www.thearyasamaj.org

ही वैज्ञानिक ऐसे नहीं हुए। लुई पैश्चर (जो एक विख्यात वैज्ञानिक हुए हैं) ने ठीक कहा है कि :

''आनेवाली संतति आधुनिक प्रकृतिवादी दार्शनिकों की मूर्खता पर हँसेगी। जितना अधिक मैं प्रकृति का अध्ययन करता हूँ, उतना ही मैं परमेश्वर के कार्यो को देखकर अधिक चकित हो जाता हूँ।''

दो विचारधाराएँ

पश्चिमी वैज्ञानिकों ने संसार के वास्तविक तत्त्व से उदासीन रहना ही श्रेष्ठ समझा और वे केवल दो भौतिक तत्त्वों के केन्द्र ही पर भ्रमण करते रहे और प्रकृति (Matter) तथा गति (Energy) की गाँठ लेकर पन्सारी बन बैठे। निस्सन्देह भौतिक तत्त्वों को लेकर भौतिक क्षेत्र में वे बहुत आगे बढ़ गए, परन्तु इस उन्नति से उन्हें शान्ति नहीं मिली। नाना प्रकार तथा नाना विधान बनाकर उन्होंने जनता को सन्तुष्ट करने के भरसक प्रयत्न किए, परन्तु सन्तोष अधिक दूर ही भागता चला गया। मृगतृष्णा के जल की तरह भौतिक तत्त्वों से काम लेनेवाली दुनिया प्यासी ही रही।

इस समय यूरोप, अमेरिका तथा रूस में दो विचारधाराएँ बड़ा बल दिखला रही हैं। रूस का वर्गवाद (साम्यवाद–Communism) या ब्रिटेन और अमेरिका इत्यादि देशों का प्रजातन्त्रवाद (Democracy) पर दोनों वादों के भक्त एक ही मंज़िल पर पहुँच रहे हैं और वह मंज़िल है – धनवान् बनने की। दोनों अधिक धन की माला जप रहे हैं। दो भिन्न विचारधाराएँ रखते हुए भी दोनों का आराध्यदेव एक ही है। इस अवस्था को देखकर सर्व–साधारण भी इसी मति के हो रहे है कि संसार में ज्ञेय तत्त्व एक ही है और वह धन है।

जब मैंने तत्त्व ज्ञान पर निबन्ध लिखना आरम्भ किया और एक सज्जन को लिखा कि मैं अपने जीवन के अन्तिम दिनों में एक ग्रन्थ 'तत्वज्ञान' लिख रहा हूँ तो उन्होंने मुझे यह पत्र लिखा :

मित्र का पत्र

''तत्त्वज्ञान पर आप अपने विचार लिख रहे हैं, यह तो प्रसन्नता की बात हैः परन्तु आप किस तत्त्व के सम्बन्ध में लिख रहे हैं, यह मुझे ज्ञात नहीं हो सका। मैं तो इस समय केवल एक ही तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझता हूँ, जिसके बिना न मनुष्य जीवित रह सकता है, न मनुष्य–समुदाय बच सकता है, न कोई सरकार चल सकती है, न कोई संस्था जीवित रह सकती है, गृहस्थियों का जीवन तो उसके बिना मृत्यु ही है। साधु, संयासी, महात्मा, वानप्रस्थी तथा ब्रह्मचारी भी उसके बिना मृत्यु के ग्रास ही बन जाते है। हो सकता है कि पहले युगों में ऐसी अवस्था न रही हो, परन्तु इस युग में तो महात्मन् ! मैं इस वाक्य को सर्वथा सत्य समझता हूँ कि :

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः सः पण्डितः
सः श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः
कांचनमाश्रयन्ति ॥

'जिसके पास धन है, वही मनुष्य ऊँचे कुलवाला, वही पण्डित, वही शास्त्रज्ञ और गुणकारी कहा जाता है। वही वक्ता है और वही दर्शन योग्य है। इसलिए सारे गुण स्वर्ण में ही विराजमान हैं।'

क्या यह असत्य है ? क्या आज धन की ही पूजा नही हो रही ? मैं तपस्वियों की भूमि उत्तराखण्ड को भी देख आया हूँ। वहाँ भी धनियों ही का मान है, गरीब को चाहे वह विद्वान ही हो कोई पूछता नहीं। ठीक ही कहा है :

शीलं शौचं क्षान्तिर्दाक्ष्यं मधुरता कुले जन्म।
न विराजन्ति हि सर्वे वित्तहीनस्य पुरूषस्य।।

''आचार, पवित्रता, क्षमा, योग्यता, मधुरता और ऊँचे कुल में जन्म, धन–हीन पुरूष के लिए ये सब गुण शोभनीय नहीं रहते।''

यह भी सर्वथा सत्य है कि :

धनं संचय काकुत्स्य धनमूलमिदं जगत्।
अन्तरं नैव पश्यामि निर्धनस्य मृतस्य च।।

' हे राजन् ! धन का संचय करो; यह संसार धनमूलक ही है। मरे हुए और निर्धन में मैं कोई अन्तर नही देखता।'

फिर देखिये कि धन देवता के भक्त तो प्राचीन काल में भी थे। भीष्म पितामह ने यही घोषणा की थी न कि :

अर्थस्य पुरूषों दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्य महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः।।

'मनुष्य अर्थ का दास है, अर्थ किसी का दास नहीं है। महाराज ! यह बात सत्य है, मैं इस समय कौरवों के अर्थ से बँधा हूँ।'

तब आप किस भ्रम में जा पड़े हैं ? इस समय क्या और पूर्वकाल में क्या, एक ही तत्त्व जानने योग्य है। यदि आप भारत या संसार के अर्थ–सङ्कट को दूर करने के लिए कुछ लिखें तो यह अधिक अच्छा होगा परन्तु आप तो सारी सम्पत्ति, पूरे वैभव को त्यागकर साधु हो गए है। आपको मेरी प्रार्थना रूचिकर प्रतीत नहीं होगी। अतएव जो कुछ भी लिखा गया इसके लिए क्षमा चाहता हूँ। आप तो धन्य हैं जो माया के इस जाल से निकल गए।''

धन ही तत्त्व है क्या ?

मैंने यह पत्र दो–तीन बार पढ़ा। बात तो ठीक लिखी है मित्र ने। धन के बिना तो कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। यज्ञ–हवन भी नहीं हो सकते। दान, पुण्य, सेवा–कार्य भी नहीं हो सकता।

जब तक जीवन है, पेट भरना ही पड़ेगा। जीवन तो हो जाए लम्बा और धन पास न हो तो वह जीवन मृत्यु से कहीं अधिक दुःखदायी हो जाता है। इसलिए धन–अर्जन के उपाय तो करने ही चाहिए परन्तु उपाय ऐसे होने चाहियें जिनको प्रयोग में लाने से श्रेष्ठ पुरूषों में निन्दा और अपशय न हो, अपितु शुद्ध कमाई हो। वेद भगवान् में कई स्थलों पर धन–सम्पत्ति के लिए प्रार्थनाएँ आती हैं, पर वेद में जहाँ '' वयं स्याम पतयो रयीणाम्'' आता है, वहाँ यह भी आदेश है :

''मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।''

'लोभ न कर, यह धन किसी का साथ नहीं देता।' लेकिन साथ न भी दे, तो भी धन की आवश्यकता भी रहती ही है, धन के लिए पुकार तो मचती ही है। कितने ही लोग उसे बहुत बड़ा तत्त्व समझते हैं।

क्या यही वास्तविक तत्त्व है जिसका ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है ? क्या इसी के प्राप्त कर लेने से सारे कष्टों, क्लेशों, दुःखों, चिन्ताओं का अन्त हो जाएगा ? अनुभव में तो ऐसा नहीं आता। धन यदि सुख का कारण होता तो सोने की लंका का स्वामी रावण क्यों दुःखी होता। कारूँ क्यों मरता ? राजा भर्तृहरि राज्य और धन छोड़कर वनों को क्यों चले जाते है? आजकल की दुनिया के करोड़ोंपति, अरबोंपति दुःखी, रोगी तथा चिन्तित क्यों दिखाई देते? सांसारिक व्यवहार चलाने के लिए तो निस्सन्देह धन आवश्यक पदार्थ है। इसका सर्वथा तिरस्कार करना कठिन है। जैसे अपने वास्तविक उद्देश्य को पाने के लिए शरीर की रक्षा आवश्यक है। जैसे देहली से बम्बई जाने के लिए रेलगाड़ी, मोटर अथवा वायुयान की आवश्यकता है। इसी प्रकार धन की भी अपने स्थान पर अवश्य जरूरत है, पर मनुष्य–जीवन का यह अन्तिम ध्येय तो नहीं। जिस प्रकार मैटर और एनर्जी ही को सब–कुछ समझने वाले पश्चिमी वैज्ञानिक दुःखी हो रहे हैं, उसी प्रकार धन ही को ज्ञेय पदार्थ समझने वाले भी दुःखी ही दिखलाई देते हैं। कारण यह है कि धन या वित्त या द्रव्य अथवा सोना, चाँदी इत्यादि उन सारे दुर्गुणों को उत्पन्न करने वाले हैं जिन्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह के नाम से पुकारा गया है। अनुभवियों ने कहा भी है :

द्रव्येण जायते कामः, क्रोधो द्रव्येण जायते।
द्रव्येण जायते लोभो, मोहो द्रव्येण जायते।।

'धन से काम, क्रोध, लोभ, मोह पैदा होता है। और भी अधिक विस्तार में धन से आने वाले दुर्गुणों का वर्णन इन दो श्लाकों में किया गया है :

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च।।
एते पंचदशाऽनर्था ह्मर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थो दूरतस्त्यजेत्।।

'चोरी, हिंसा, मिथ्याभाषण, पाखण्ड, काम (पराया धन लेने की इच्छा), क्रोध, अंहकार, मद, भेद–बुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा (पराई उन्नति को सहन ना करना) और व्यसन (स्त्री–लम्पटता, जुआ और मद्यपान आदि) ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्यों में धन के ही कारण माने गए हैं। इसलिए अपना कल्याण चाहनेवाला पुरूष अर्थ नामक अनर्थ को दूर से त्याग दे।' जो धन इतने अनर्थों, दुर्गुणों, दुर्व्यसनों तथा पापों का जनक है, क्या वह ऐसा तत्त्व हो सकता है जिसके पीछे मानव पागल हो उठे ?

स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान्।
द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि।।

'स्वर्ग और मोक्ष के द्वारभूत इस मनुष्य–शरीर को पाकर कौन मरणशील पुरूष अनर्थ के घर धन में आसक्ति करेगाा ?'

फिर यह कहाँ की बुद्धिमत्ता है कि क्षुधापूर्ति के नाम पर इतने आडम्बर रच लिए जाएँ ? कवि ठीक कहता है :

शमयितुमौदरमग्निं संसारख्याम्बुधौ
निमज्जन्ति।
तुहिनव्यथानिवृत्त्यै न हि वेश्मनि पावको देयः।।

'पेट की क्षुधा–रूपी अग्नि को शान्त करने के लिए अविवेकी पुरूष संसार–रूपी समुद्र में डूब जाता है। यह बड़ा अनुचित है क्योंकि शीत की पीड़ा दूर करने के लिए घर या मकान को आग नहीं लगाई जाती।'

पिछले युगों का तो पता नहीं, पर इस युग में आप स्पष्ट देख रहे हैं कि स्वर्ण तथा चाँदी और अन्य धातुओं के ढेर प्रतिदिन बढ़ते ही चले जा रहे हैं, पर संसारी लोग फिर भी अपने आपको निर्धन ही समझते हैं। यह धन–संग्रह करने की लालसा कभी पूरी नहीं होती, नित्य प्रति बढ़ती ही चली जाती है। यह तृष्णा न आज तक किसी की शान्त हुई, न आगे होगी। धन यदि तत्त्व होता जिसके प्राप्त कर लेने से कोई मोह, कोई शोक नहीं रहता, आनन्द–ही–आनन्द चारों और प्रतीत होता, तब तो धन के लिए भटकना ठीक था।

संसार के बड़े–बड़े धनियों का अन्त

संसार के बड़े–बड़े धनियों का अन्त किस प्रकार हुआ, इसका बड़ा सुन्दर उत्तर श्री रणवीर जी ने दैनिक 'मिलाप' देहली में दिया है। श्री रणवीर जी ने एक प्रयत्न के उत्तर में लिखा कि–धनियों का सर्वदा अन्त अच्छा नहीं हुआ। सन् 1623 में शिकागों के एक होटल में संसार भर के बड़े–बड़े

शेष पृष्ठ 4 पर

www.thearyasamaj.org

कल्याण मार्ग के पथिक थे–स्वामी श्रद्धानन्द

● डॉ. भवानीलाल भारतीय

सामान्य लोगों और असाधारण चारित्रिक सम्पत्ति के धनी महापुरुषों में यही अन्तर होता है कि सामान्य व्यक्ति जहाँ अपने दोषों, बुराईयों तथा अवगुणों का गोपन करते हैं, वहाँ महापुरुष अपने जीवन में आए दोषों तथा दुर्गुणों को सार्वजनिक करने में कोई संकोच नहीं करते। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में अपने किशोर वय में किए गए मांसाहार आदि दोषों को स्थान दिया तो स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' में युवा काल में आए उन चारित्रिक दुर्गुणों और दुर्व्यसनों को प्रकट करने में कोई संकोच नहीं किया, जो संगति दोष या अन्य किसी कारण से उनमें आ गए थे। मूलतः पंजाब के लाला नानकचंद तत्कालीन संयुक्त प्रान्त (यू.पी.) के पुलिस विभाग में इन्सपैक्टर थे और उनकी बदली विभिन्न स्थानों पर होती रहती थी। इस स्थिति में उनके छोटे पुत्र मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) की शिक्षा भी अव्यवस्थित रही। उनका कालेज का अध्ययन बनारस में हुआ और यहाँ रहते हुए उन्होंने अंग्रेजी के घटिया श्रेणी के चरित्र विनाशक उपन्यासों को पढने में विशेष दिलचस्पी ली। इस कारण वे स्वयं को उपन्यास के रोमांटिक हीरो मानने लगे और प्रेमियों के पारस्परिक घात प्रतिघात में स्वयं को सहभागी मानने लगे।

युवावस्था में कुसंगति में पड़ जाने के कारण वे शराब पीने लगे। पाश्चात्य दर्शन की नास्तिक धारणाओं ने उन्हें अनीश्वरवादी बना दिया और वे अपने तर्क हथियारों सेआस्तिक समुदाय को ललकारने लगे। चारित्रिक पतन के इस गहन गह्वर में फँसे युवा मुन्शीराम को उबारने का श्रेय स्वामी दयानन्द की बरेली यात्रा को है, जहाँ वे इस देशभक्त सुधारक संन्यासी के सम्पर्क में आए, उनके उपदेश सुने तथा अपने जीवन को देश और समाज के हित में लगाने का संकल्प ग्रहण किया।

वकालत पढ़ने तथा कानूनी पेशे में आने पर उनका लाहौर के आर्य समाज से सम्पर्क हुआ। एक–एक कर उन्होंने अपने दोषों को दृढतापूर्वक दूर किया। तथा स्वयं को स्वदेश, स्वधर्म तथा राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार हेतु लगाया। आर्य समाज में प्रविष्ट होने के पश्चात् उन्होंने इस संस्था के धार्मिक मन्तव्यों का तो प्रचार किया ही, सामाजिक कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा अन्य दोषों के विरुद्ध प्रबल कार्य किया। जाति पाँति की कुरीति को दूर करने में उन्होंने स्वयं आदर्श उपस्थित किया तथा अपने लड़के लड़कियों के अन्तर्जातीय विवाह कराए। छुआछूत तथा जाति भेद के विरुद्ध उन्होंने प्रबल जनमत जगाया। पंजाब तथा सीमा से लगे हुए कश्मीर में कथित दलित वर्ग पर सवर्णों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों के विरूद्ध लड़ाई छेड़ी। भूकम्प, अकाल तथा महामारी जैसी आकस्मिक आपदाओं से ग्रस्त लोगों के बचाव तथा रक्षा में वे स्वयं आगे रहे तथा स्वसंचालित संस्थाओं के कार्यकर्ताओं को भी इन रचनात्मक कार्यों में लगाया। राष्ट्रभाषा के रूप में वे हिन्दी को प्रतिष्ठित किए जाने के प्रबल पक्षपाती थे। फलतः हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भागलपुर अधिवेशन में उन्हें सभापति का पद दिया गया और राष्ट्रभाषा प्रचार के अनेक सूत्र उन्होंने अपने अभिभाषण में प्रस्तुत किए।

भारत के स्वाधीनता संग्राम में उनकी भागीदारी महात्मा गांधी के राष्ट्रीय मंच पर आने के पहले से ही रही थी। महात्मा गांधी के द्वारा अफ्रीका में की गई सार्वजनिक सेवाओं में आर्थिक सहायता उन्होंने गुरूकुल कांगड़ी के छात्रों और अध्यापकों के सहयोग से की। उनके सार्वजनिक हित के कार्यों की जानकारी गांधी जी को पं. गोपाल कृष्ण गोखले से मिली। गोखले ने उन्हें देश बंधु एण्ड्रूज से भी परिचित कराया और महाकवि रवीन्द्रनाथ ने शान्ति निकेतन की स्थापना में गुरूकुल कांगड़ी के पैटर्न को ही अपनाया। जब उन्होंने देखा कि भारत में कन्या शिक्षा सर्वथा अपेक्षित है और कुछ ईसाई संस्थाएँ कन्या पाठशालाएँ चला कर इन अबोध छात्राओं को भारतीय आस्थाओं और संस्कृति से विमुख कर रही हैं। इस समस्या के समाधानार्थ उन्होंने जालंधर में कन्या महाविद्यालय तथा देहरादून में कन्या गुरूकुल की स्थापना कर राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति को जीवित और जागृत किया। इससे पहले 1902 में उन्होंने गंगा के किनारे कांगड़ी (जिला बिजनौर) ग्राम की भूमि पर स्वदेशी और पुरातन आदर्शों को आधार बना कर जिस गुरुकुल की स्थापना की, आगे चलकर उस संस्थान ने भारत की शिक्षा पद्धति में क्रान्तिकारी आदर्श उपस्थित किया।

शीघ्र ही स्वामी श्रद्धानन्द देश के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़ गए। 1919 में अमृतसर के जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड हुआ तो स्वामी जी ने उस समय की विषम परिस्थिति में भी कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न कराया और स्वागताध्यक्ष का दायित्व ग्रहण किया। बाद में 1920 में महात्मा गांधी द्वारा प्रवर्तित असहयोग आन्दोलन में उन्होंने दिल्ली की जनता का नेतृत्व किया और चाँदनी चौक में अंग्रेजी हुकूमत को चुनौती दी। जब मौलाना मोहम्मद अली ने कांग्रेस के काकीनड़ा (आंध्र प्रदेश) अधिवेशन में अछूत समस्या के समाधानार्थ उन्हें हिन्दू और मुसलमानों में बराबर बाँटने का प्रस्ताव रखा तो अकेले स्वामी जी ने ही इस अनैतिक प्रस्ताव का पुरजोर विरोध किया।

महात्मा जी की सम्प्रदाय विशेष को सन्तुष्ट करने की नीति के वे विरोधी थे। फलतः उन्होंने महामना मालवीय जी के साथ हिन्दू संगठन और विधर्मी बने अछूतों को हिन्दू धर्म में पुनः प्रविष्ट कराने का शुद्धि आन्दोलन चलाया। इससे उत्तेजित होकर कट्टरपन्थी मुसलमानों का एक वर्ग उनका शत्रु बन गया। अन्त में वे इन्ही संकुचित शक्ति के षड्यंत्रकारियों के शिकार हुए और 23 दिसम्बर 1926 को एक आततायी ने रुग्ण अवस्था में लेटे स्वामी श्रद्धानन्द की गोली मार कर हत्या कर दी। उस समय गुवाहटी में कांग्रेस का अधिवेशन चल रहा था। यहाँ यह समाचार अत्यन्त दुःख के वातावरण में सुना गया।

315 शंकर कालोनी श्रीगंगानगर

☞ पृष्ठ 3 का शेष

तत्त्व-ज्ञान

धनियों की एक सभा में दुनिया की सबसे बड़ी लोहा–कम्पनी के प्रधान भी विद्यमान थे। अमेरिका के नैशनल सिटी बैंक के प्रधान भी, अमेरिका की सबसे बड़ी गैस कम्पनी के सभापति, गेहूँ के सबसे बड़े सट्टा करने वाले न्यूयॉर्क स्टाक एक्सचेंज के प्रधान, अमेरिका की हॉलस्ट्रीट के सबसे बड़े गोदाम के स्वामी, सारी दुनिया के देशों के सैटलमेंट बैंक के प्रधान भी। संसार के ये उन इने–गिने धनियों में से थे जिनको स्वयं पता नहीं था कि उनके पास कितनी धनराशि है। परन्तु 25 वर्ष के पश्चात् दुनिया की सबसे बड़ी लोहा कम्पनी के प्रधान चार्ल्स दीवालिया होकर मरे। दुनिया की सबसे बड़ी व्यापारी कम्पनी के प्रधान सेमुअल जीवन के अन्तिम दिनों में भिखारी थे और साथ ही छिपे हुए सरकारी अपराधी भी। सबसे बड़ी गैस कम्पनी के प्रधान हावर्ड पागलों के अस्पताल में गए। गेहूँ का सट्टा करने वाले मरने से पूर्व दीवालिया हुए। न्यूयॉर्क स्टॉक एक्सचेंज के प्रधान विटने जेलखाने में पड़े और बन्दीगृह में ही उनकी मृत्यु हुई। सबसे बड़े गोदाम के स्वामी ने आत्मा–हत्या कर ली। इसी प्रकार दुनिया के सारे देशों के बैंक के प्रधान फेज़र ने भी आत्मा–हत्या कर ली।

ठीक ही कहा है और यह अटल सत्य है :

अर्थस्योपार्जने दुःखमर्जितस्यापि रक्षणे।
नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं दुःखभाजनम्।।

'धन के कमाने में दुःख, कमाकर उसकी रक्षा करने में दुःख, धन का नाश हो जाए तो दुःख, खर्च हो जाए तो दुःख। ऐसे धन पर धिक्कार है जो दुःख–ही–दुःख का कारण है!'

एक और अनुभवी ने कहा है :

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्।।

'धन के कमाने, कमाकर उसको बढ़ाने में, फिर उसकी रक्षा और व्यय करने में नाश, और उपभोग में–मनुष्यों को बड़ा भारी परिश्रम, हर किसी से भय, चिन्ता और भ्रम होता है।'

आजकल की अधिकतर जनता इस धन की उपासक है। धन के इन उपासकों का मैं विरोधी नहीं हूँ। धन की (लक्ष्मी की) उपासना करके देख लें, अन्त में उनको यही कहना पड़ेगा कि–जिस धन को उन्होंने सब–कुछ समझ रखा था, वही दुःख का सबसे बड़ा कारण सिद्ध हुआ। धन बुरी वस्तु नही, जीवन–यात्रा में इसका भी एक स्थान है, परन्तु परम–तत्त्व धन ही को समझ बैठना भारी भूल है।

शेष अगले अंक में....

www.thearyasamaj.org

महर्षि का काशीधाम में सप्तम व अन्तिम शुभागमन

● खुशहाल चन्द्र आर्य

दानापुर में धर्म वृक्ष को उपदेशामृत से सिंचन करके, महर्षि जी कार्तिक सुदी चतुर्दशी 1936 तदनुसार सन् 1879 में प्रस्थान कर उसी दिन काशीधाम में सुशोभित हुए। काशीधाम में उनका यह शुभागमन सप्तम और अंतिम था। पण्डित भीमसेन जी के नाम से एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ और काशी के कोने–कोने में लगाया गया कि श्रीमद्‌यानन्द सरस्वती, यहाँ पधार कर, विजय नगर के आनन्द उद्यान में विराजमान हैं। वे मूर्तिपूजा और पुराणों का प्रबल खण्डन करते हैं। इनको वेद–विरूद्ध सिद्ध कर दिखलाते हैं। जो पण्डित इनको वेद–विरूद्ध नहीं है, सिद्ध करने का सामर्थ्य रखता हो वह स्वामी जी के सामने आकर शास्त्रार्थ कर लें।

जब इस विज्ञापन पर किसी महामहोपाध्याय की निद्रा न टूटी तो चौगुने बल से दूसरा विज्ञापन निकला गया। पण्डित लोग घरों में बैठे तो बहुतेरी डींगे मारते, परन्तु शास्त्रार्थ करने का नाम तक न लेते। जैसे कदली–कुँज को कदन–मर्दन करने वाले कुञ्जर, केसरी गर्जना सुनकर चिंघाड़ते अवश्य हैं परन्तु बल के कारण नहीं, पत्युत भय से, ऐसे ही शास्त्री जन स्वामी जी के सिंहनाद से कम्पित होकर चिल्लाते तो बहुत थे, परन्तु उस नरसिंह के समीप आने का साहस नहीं करते थे।

श्रीमान् कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्स्की तीन चार साथियों सहित श्री महाराज के दर्शन करने के लिए मार्गशीर्ष सुदी 2 सं. 1936 को काशी में आए। उनके आगमन के पश्चात् दूसरे दिन राजा शिवप्रसाद भी वहाँ आ गए। स्वामी जी से थोड़ी देर तक बातचीत करने के अनन्तर, वे अल्काट महाशय और मैडम से मिले। श्री अल्काट और मैडम, स्वामी जी के सत्संग में बैठकर ज्ञान–चर्चा और योग–वार्त्ता का आनन्द उपलब्ध किया करते थे।

स्वामी जी ने जब देखा कि शास्त्रार्थ के लिए तो काशी का कोई पण्डित समुद्यत नहीं हुआ, तो उन्होंने उपदेश देने का विचार कर लिया/पं. भीमसेन जी की ओर से विज्ञापन निकाला गया कि मार्गशीर्ष सुदी 7 सम्वत् 1936 को, बँगाली टोला अन्तर्गत पुत्री पाठशाला में, स्वामी जी का व्याख्यान होगा और अल्काट महाशय भी भाषण करेंगे। व्याख्यान के विज्ञापनों को देखकर काशी के कुछ मनुष्यों ने एक निन्दनीय नीति का आश्रय लिया। उन्होंने कलेक्टर महाशय को जाकर कहा कि "यदि स्वामी का भाषण हुआ तो काशी में शान्ति भंग हो जाएगी।

जिन स्वामी जी के इने–गिने संगी–साथी थे, वे सारे नगर की जन–संख्या के साथ लड़–भिड़ कर शान्ति भंग कैसे कर देंगे, इस पर कुछ ध्यान दिए बिना, कलेक्टर महाशय ने आज्ञा पत्र लिखकर ठीक उसी समय स्वामी जी के पास पहुँचाया, जब वे पुत्री पाठशाला के द्वार पर पहुँचे। उस में लिखा था कि काशी में कोई वाद अथवा व्याख्यान न कीजिए।

कलेक्टर महाशय की आज्ञा पर "पायोनियर" समाचार–पत्र ने अपने पोष बदीश सं. 1936 के अंक में जो टिप्पणी की थी उसका सारांश यह है :– हमें निश्चय था कि भारत के शासक जन किसी के धर्म प्रचार में हस्तक्षेप नहीं करते। दिल्ली की घोषणा का भी यही सार मर्म है। परन्तु आज यह बात विचारणीय है कि ब्रिटिश शासन में हमको धार्मिक स्वतन्त्रता है भी कि नहीं ? देखिए, एक संन्यासी जिसकी विद्या में किसी को एतराज तक करने का अवकाश नहीं है, वह लगातार पाँच वर्षों से नगर–नगर में चक्कर लगाकर वेदों का प्रचार करता है, वह केवल एक परब्रह्म की उपासना करने का उपदेश देता है। उसने युक्ति प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि मूर्ति–पूजा वेद विरूद्ध है। जो, बुरी–बुरी रीतियाँ आर्यावर्त्त और आर्य जाति को बिगाड़ रही है, उनको वह हटाता है। वह अपने देशवासियों के सुधार के लिए रात–दिन लीन रहता है। आज जो भारत के युवकों में उन्नति की उच्चाकांक्षा पाई जाती है, यह उसी के उपदेशों का प्रताप है। वर्तमान शासन के विरूद्ध आन्दोलन करने की उसने कभी इच्छा नहीं की। उसने तो अपने भाषणों में कई बार कहा है कि यह शोभा ब्रिटिश राज्य को ही प्राप्त है कि किसी के मत में विघ्न–बाधा नहीं डाली जाती। वह महापुरूष आर्य समाज का संस्थापक, आचार्य दयानन्द सरस्वती है। उन्होंने काशी में पधार कर विज्ञापनों द्वारा धर्म का आन्दोलन उत्पन्न कर दिया। स्वार्थी लोग उसका विरोध करने के लिए इतने तुले कि कलेक्टर को कहकर उनका व्याख्यान बन्द करा दिया। इस बात की व्याख्या करना व्यर्थ है कि एक योरोपीय मजिस्ट्रेट ने, उनका व्याख्यान बन्द कर दिया। निसंदेह कलेक्टर "वाल" महाशय विचारने पर स्वयमेव अनुभव करेंगे कि उन्होंने इस कार्यवाही हो, इस युग के अत्यन्त विद्वान योग्य महात्मा में हृदय को ठेस पहुँचाई है।

वाल महाशय की उस आज्ञा पर और भी अनेक पत्रों ने कड़ी समालोचना की और उनके कर्म को सवर्था अनुचित ठहराया। अन्त में किसी ऊपरी दबाव से अथवा अपने पिछले किये को अनुचित जानकर, "वाल" महाशय ने मार्गशीर्ष सुदी 14 सन् 1936 को स्वमी जी की सेवा में पुलिस के इन्सपेक्टर को भेजकर सूचित किया, "अब आप अपने निश्चयानुसार धर्म प्रचार करने में स्वतन्त्र हैं।" इसके पश्चात् वाल महाशय स्वयं स्वामी जी से मिले और अपने आज्ञापत्र के विषय में कहने लगे, यह सब आपकी रक्षा के निमित्त किया गया था। एक तो मुहर्रम के दिनों में आपका व्याख्यान देना, अपने जीवन को जोखिम डालना था। दूसरे काशी के बहुत बड़े सम्भ्रान्त व्यक्ति ने हमें कहा था कि यदि स्वामी जी व्याख्यान देंगे तो अवश्य शान्ति भंग हो जाएगी।

स्वामी जी ने "वाल" महाशय से कहा " आप राजपुरूष है। प्रबन्ध करना आपका कर्त्तव्य है। जब आपको ज्ञात हुआ था कि कुछ लोग गड़बड़ करना चाहते हैं तो आप उन्हें डाँट मारते और व्याख्यान स्थान पर पुलिस का प्रबन्ध करते। परन्तु आपने उल्टा ही व्याख्यान बन्द कर दिया"। "वाल" महाशय ने अपनी मूल स्वीकार की और आगे को सावधान रहने का वचन दिया।

कहा जाता है कि प्रान्तीय गर्वनर महोदय ने वाल महाशय से उत्तर माँगा था कि तुम ने स्वामी जी के व्याख्यान को क्यों बन्द किया था ? व्याख्यान करने की पाबन्दी उठा दी गई, परन्तु स्वामी जी फाल्गुन सदी नवमी सन् 1936 तक अपने स्थान पर ही सत्संग लगाते रहे। धर्मभिलाषी जी जन वहीं आकर आनन्द उठाते थे। फाल्गुन सुदी दशमी सम्वत् 1936 से लक्ष्मी कुण्ड पर, साँझ के सात बजे से नौ बजे के प्रतिदिन, स्वामी जी के धुँआधार व्याख्यान होने लगे। इन व्याख्यानों में उन्होंने मिथ्यामूलक मन्तव्यों का बल पूर्वक खण्डन किया। चैत्र सुदी छट को जब व्याख्यान–माला समाप्त हुई तो उसी दिन आर्य समाज की शुभ स्थापना कर दी गई।

स्वामी जी के व्याख्यानों से एक बार तो काशी हिल गई थी। जहाँ जाओ, वहीं व्याख्यानों की ही चर्चा सुनाई देती। उपदेशों में पण्डित लोग दल बाँध कर आते, परन्तु शास्त्रार्थ और प्रश्नोत्तर करने के लिए एक भी समुद्यत न होता।

इस लेख को पढ़ने से हमारे मन में दो विचार उभर कर आते हैं, जो इस भाँति हैं :–

1. महर्षि दयानन्द जब पहले काशी नगर में सन् 1869 में आए थे, तब काशी के पौराणिक विद्वानों से स्वामीजी का शास्त्रार्थ 'वेदो में मूर्तिपूजा नहीं है' विषय पर हुआ था। तब यहाँ के विद्वान मूर्ति–पूजा वेदों में है, यह सिद्ध नहीं कर सके थे और स्वामी जी की विजय हुई थी। पर छल–बल और गुण्डे–बदमाशों के सहारे उन्होंने काशी के महाराज ईश्वरी नारायण सिंह से विजय की घोषणा करवा दी थी। पर इस लेख से यह सिद्ध होता है कि उस शास्त्रार्थ में स्वामी जी की ही विजय करवा दी थी। यदि पराजय होती तो इस बार स्वामी जी इतना ललकार कर शास्त्रार्थ में करने की घोषणा नहीं करते।

2. इस लेख में इन्सपेक्टर "वाल" महोदय ने गलत निर्णय ले कर स्वामी जी को प्रवचन करने से रोका जिसका भारी विरोध समाचार–पत्रों व आम लोगों द्वारा हुआ, जिसके कारण "वाल" महोदय को स्वामी जी से क्षमा माँगनी पड़ी। इससे सिद्ध होता है कि उस समय स्वामी जी के प्रवचनों का जनता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ने लगा था। यदि ईश्वर की कृपा से स्वामी जी बीस वर्ष और जीवित रह जाते और चारों वेदों का हिन्दी में भाष्य कर पाते तो केवल भारत ही नहीं बल्कि पूरा विश्व वैदिक धर्मी बन जाता और स्वामी जी अपने जीवन में ही अपने विचारों को साकार होते देख पाते।

गोविन्द रामआर्य एण्ड सन्स
महात्मा गांधी रोड़, (दोतल्ला)
कलकत्ता – 700007,
फो. : 22183825 26758903

हम कैसा ईश्वर चाहते हैं

● अभिमन्यु कुमार खुल्लर

लेख का शीर्षक अधिकांश पाठकों को बेतुका लगेगा। है भी। ईश्वर क्या By choice होता है, इच्छा से मिलता है? वास्तविकता तो यही है कि ईश्वर जैसा भी है, उसके स्वरूप को हमें पहचानना होगा, समझना होगा। वैदिकयुगीन ऋषि–महर्षियों का चिंतन इन्हीं बिन्दुओं पर केंद्रित था।

वैदिककालीन ऋषियों ने ईश्वर का स्वरूप कैसा निर्धारण किया, उसे महर्षि दयानंद के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:–

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप[1], निराकार[2], सर्वशक्तिमान[3], न्यायकारी[4], दयालु[5], अजन्मा[6], अनन्त[7], निर्विकार[8], अनादि[9], अनुपम[10], सर्वाधार[11], सर्वेश्वर[12], सर्वव्यापक[13], सर्वान्तर्यामी[14], अजर[15], अमर[16], अभय[17], नित्य[18], पवित्र[19] और सृष्टिकर्ता[20] है।

भू–मण्डल में ऐसे ईश्वर की स्वीकार्यता, मान्यता 1 अरब 96 करोड़ 8 लाख 53114 वर्ष रही। इसमें छः हजार वर्ष कम किए जा सकते हैं, क्योंकि विद्वान मानते हैं कि महाभारत से एक वर्ष पूर्व वैदिक सभ्यता का तिरोहन प्रारम्भ हो गया था।

वास्तविकता के धरातल पर हम विचार करें तो उपरोक्त गुणों से सम्पृक्त ईश्वर की स्वीकार्यता हमें दिखाई नहीं पड़ती। आज हम ईश्वर का स्वरूप अपनी इच्छा के अनुसार निर्धारित करना चाहते हैं या कहें कि हम अपनी इच्छा का ईश्वर चाहते हैं।

हम माँग, मनोकामना, मन्नत पूरी करने वाला ईश्वर चाहते हैं। माँग, मन्नत यदि कब्र में लेटा हुआ मुर्दा भी पूरी कर सकता है, तो वह भी चलेगा। हमें मालूम ही नहीं है कि वेदोक्त ईश्वर ने सृष्टि रचना के साथ जीवात्मा की समस्त न्यायोचित माँगों को लोक कल्याण को, जीव के चहुँमुखी कल्याण का, आजीवन पूरी करने का ठेका ले लिया था। उन्हें पूरी करने का रास्ता भी बता दिया था। हम उस रास्ते पर चलना नहीं चाहते। चाहें वेद कहें या गीता–अन्यथा ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का यह स्वरूप नहीं होता तो आज उपासना गृहों में सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। लोग शुद्ध मन से ईश्वर की, केवल ईश्वर की उपासना के लिए इन उपासना गृहों में नहीं जाते। श्रद्धासुमन के साथ रिश्वत का प्रस्ताव भी अपनी आर्थिक सम्पन्नता के अनुरूप करते हैं। प्रसाद से लेकर स्वर्ण मुकुट भेंट करने तक। मन्नत पूरी न करने पर धौंस देते हैं तैरी चौखट पर नहीं आएँगे। यह प्यार भरा उलाहाना नहीं होता है। दुःख, निराशा व आक्रोश भरे उद्गार होते हैं।

इस एक बिन्दु के अतिरिक्त अन्य दो बिन्दुओं पर विचार करना मेरे आशय को पूर्णतया स्पष्ट करने के लिये आवश्यक है।

दूसरा बिन्दु है– पापाचरण से मुक्ति। महर्षि दयानंद ने ईश्वर को न्यायकारी निरूपित किया है। न्यायकारी शब्द के अंतर्गत कर्मफल प्रदाता का गुण अर्न्तभूत (Inherent) है। यह हम नहीं चाहते।

पौराणिक बन्धुओं के लिए तो पाप–ताप निवारण के लिए ईश्वर की आवश्यकता ही नहीं है। गंगा मैया ही काफी है। प्रत्येक कुम्भ पर करोड़ों हिन्दू भक्तों के पाप गंगा मैया बिना डिटरजेंट लगाए (बिना कर्मफल दिए) धो डालती है। यदि इस प्रक्रिया को पूर्णतया सत्य भी मान लें तो गंगा मैया उन भक्तों से क्यों नहीं कहती कि इस बार तुम्हें पाप मुक्त करती हूँ अगली बार नहीं करूँगी। लेकिन गंगा तो मुक्तिदायिनी जलप्रवाह है। पाप करके आइए, वह पाप धो देगी। आपका काम है पाप करना और गंगा का काम है, पाप धोना। यह कार्य निरन्तर उस समय से चल रहा है जबसे गंगा को पाप धोने का ठेका धर्मधुरीणों ने अयाचित ही दे दिया था। वेदोक्त ईश्वर कहता है कि पाप कर्म से बिना यथोचित दण्ड पाए निवृत्ति नहीं, छुटकारा नहीं। गंभीर दुराचरण की कड़ी से कड़ी दण्ड व्यवस्था। प्रत्येक पापकर्म की दण्ड व्यवस्था। गंगा पूछती नहीं कि कौन सा पाप किया है। एक डुबकी लगाई और एक नहीं, सब पाप धुल गए।

पाप निवृत्ति का यह प्रसंग ईश्वर की न्याय व्यवस्था से जुड़ा है। महर्षि ने संदर्भित वर्णन में ईश्वर का न्यायकारी होनी भी बताया है। ईश्वर का वेदोक्त न्यायकारी स्वरूप विश्व भर के 99.99 प्रतिशत जनसमुदाय को स्वीकार्य नहीं है। प्रतिशत बढ़ाकर शत प्रतिशत कर सकता हूँ पर अज्ञात ईश्वर भक्तों के लिए कुछ गंजाइश तो इस अल्पज्ञ को छोड़नी ही पड़ेगी।

ईश्वर को न्यायकारी तो सब चाहते हैं। पर ऐसा न्यायाधीश जो उनके ही पक्ष में निर्णय दे। चाहे वे गलत हों या सही हों। हम ईश्वर को भी उसी रूप में देखना चाहते हैं जिस रूप में मानवीय न्यायालयों में दिखाई पड़ता है। मानवीय न्यायालयों में निर्णय गवाह, सबूत के आधार पर होता है। गवाह, सबूत ऐसे होने चाहिए जिनसे न्यायाधीश पूर्णतया संतुष्ट हो अन्यथा शक की स्थिति में लाभ–आरोपी को मिलता है। हमारे यहाँ तो ब्रिटिश न्याय व्यवस्था की परम्परा अक्षरशः निभाई जा रही है। सौ अपराधी छूट जाएँ, लेकिन एक निरपराधी को सजा नहीं मिले। ऐसी मानसिकता से अपराधियों को सजा मिलने की संभावना कम होती है। न्याय व्यवस्था की कई सीढ़ियाँ हैं। ट्रायल कोर्ट से लेकर उच्चत्तम न्यायालय तक। फिर जघन्य अपराधों में मृत्यु दण्ड पाए अपराधियों की दया याचना के लिए राष्ट्रपति महोदय का द्वार खुला है। यह स्थिति है, मानवीय अदालतों की।

वैदिक ईश्वर की न्याय व्यवस्था में एक मात्र न्यायाधीश वही है। न उसके नीचे कोई अदालत है और न कोई ऊपर। उसे गवाह, सबूत, सिफारिश किसी की जरूरत नहीं क्योंकि वह सर्वान्तर्यामी है। पक्ष और विपक्ष दोनों ही पक्षकारों के कर्मों की उसे पूरी पूरी जानकारी है। वह न्याय करता है; फैसला नहीं। फैसला मानवीय अदालतें करती हैं। जितना बड़ा वकील, उसकी तर्कों की उतनी बड़ी धार उतना ही फैसला उसके पक्षकार के पक्ष में जाने की प्रबल संभावना। लेकिन कभी यहाँ भी दाव गलत पड़ जाता है। एक पेशी के साढ़े चार करोड़ रुपए डकार लेने के बाद भी जेठमलानी आसाराम बापू को जमानत नहीं दिलवा सके। खैर छोड़िए।

वेदोक्त ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी होने में यानी जहाँ प्रकरण घटित हुआ, वहाँ भी वह मौजूद था। जिन व्यक्तियों के बीच घटा उनकी आत्मा के साथ में विराजमान था। इसलिए वह स्थातथ्य न्याय करता है। उसे डराया, फुसलाया नहीं जा सकता। उसके निर्णय की अपील नहीं क्योंकि उसके ऊपर, नीचे कोई नहीं। दण्ड कम–ज्यादा होने की गुंजाइश नहीं। व्यक्ति जानता है उसने पाप किया है, अपराध किया है। तरुण तेजपाल की तरह अपराध की स्वीकृति करने पर, पीड़िता से क्षमा याचना करने पर तथा स्वयं को कार्य से छः माह के लिए निवार्सन का दण्ड भोगने पर भी अपराध की निवृत्ति नहीं होगी। बताईए ऐसा ईश्वर कौन चाहेगा?

इस्लाम व ईसाईयत के पापाचरण से मुक्ति, छुटकारे के दावे यदि सामान्य बौद्धिक स्तर पर स्वीकार्य होते तो संपूर्ण विश्व बिना खून–खराबे के स्वतः प्रसन्नतापूर्वक ये धर्म अपना लेता और पूरी शांति से रहता। परन्तु ऐसा नहीं है।

इस्लाम में अल्लाहताला का न्याय रसूल की सिफारिश पर निर्भर करता है। और केवल इस्लाम के अनुयायियों पर ही लागू होता है। वेदोक्त ईश्वर की तरह, विश्व के समस्त मानव समुदाय पर नहीं। इस्लाम में अनुयायियों के गुनाह सुनाने/बताने के लिये रसूल की आवश्यकता है और इस जीवनकाल में पौराणिक भाईयों की तरह पापनिवृत्ति की कोई व्यवस्था नहीं है। दूसरे अल्लाहताला की अदालत का फैसला केवल एक दिन यानी कयामत के दिन ही होगा। तब तक कबर में ही रहना होगा।

ईसाईयत में यह कार्य ईसामसीह करते हैं। उन तक सिफारिश पहुँचाने का काम पादरी लोग 'पाप की स्वीकृति' (कनफैशन) कराकर करते हैं। इस तरह ईसाईयत में पापमुक्ति की दो टियरवाली व्यवस्था है। पाप कर्मों की मुक्ति की गारण्टी दोनों धर्मों (मतों) में है।

अब आप ही बताईए, हमें किस धर्म को मानने में लाभ है। एक वह जो पाप कर्मों से मुक्ति की गारण्टी, शत–प्रतिशत गारण्टी दे या वह जो न्यायानुसार दण्ड विधान की व्यवस्था करे। बड़ा कठिन है वेदोक्त न्यायकारी ईश्वर को मानना।

वेदोक्त संस्कृति, उसकी ईश्वर की अवधारणा, सृष्टि उत्पत्ति के साथ ही एक अरब 96 करोड़ 8 लाख 53 हजार 114, (–) 6 हजार वर्ष तक इस भूमण्डल पर रही। इस विरासत का अंतिम उत्तराधिकारी महर्षि जैमिनी को माना जाता है। छः हजार वर्ष के अंतराल के पश्चात् गुरू विरजानंद जी महाराज ने इस विरासत को सँभालने व दायित्व शिष्य दयानंद को सौंपा। जिस पथ पर महर्षि दयानंद को चलना पड़ा था वह पथ आज भी उतना ही कंटकाकीर्ण है और उस पथ पर चलने वाले का हश्र भी उतना ही सुनिश्चित है जो महर्षि दयानंद का हुआ।

22, नगरनिगम क्वार्टर्स, जीवाजीगंज,
लश्कर ग्वालियर –474001 म.प्र.

वैदिक ईश्वर की न्याय व्यवस्था में एक मात्र न्यायाधीश वही है। न उसके नीचे कोई अदालत है और न कोई ऊपर। उसे गवाह, सबूत, सिफारिश किसी की जरूरत नहीं क्योंकि वह सर्वान्तर्यामी है। पक्ष और विपक्ष दोनों ही पक्षकारों के कर्मों की उसे पूरी पूरी जानकारी है। वह न्याय करता है; फैसला नहीं। फैसला मानवीय अदालतें करती हैं। जितना बड़ा वकील, उसकी तर्कों की उतनी बड़ी धार उतना ही फैसला उसके पक्षकार के पक्ष में जाने की प्रबल संभावना। लेकिन कभी यहाँ भी दाव गलत पड़ जाता है। एक पेशी के साढ़े चार करोड़ रुपए डकार लेने के बाद भी जेठमलानी आसाराम बापू को जमानत नहीं दिलवा सके। खैर छोड़िए।

www.thearyasamaj.org

ईश्वर की सहायता के बिना यज्ञ पूरा नहीं होता

● टीकाराम आर्य

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चना सधीनां योगमिन्वति।। ऋग्वेद मंडल 1–सूक्त 18–मंत्र

उपरोक्त वेद मंत्र का शब्दार्थ व व्याख्यान स्वर्गीय पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय जी ने अपनी पुस्तक ''वैदिक मणिमाला'' के पृष्ठ संख्या 5 से 8 तक में निम्न प्रकार किया है।

यस्मात–जिसके, ऋते=बिना, विपश्चितः चन=विद्वान का भी, यज्ञः=यज्ञ या शुभ कर्म, न=नहीं, सिध्यति=सिद्ध होता, सः=वह ईश्वर, धीनां=बुद्धियों के, योगम्=सम्बध में, इन्वति=व्यापक होता है।

प्रत्येक शुभ काम करने के लिए विद्या तथा बुद्धि चाहिए इस बात को सभी लोग मानते हैं। कौन ऐसा है जो कह सके कि बिना ज्ञान के किसी शुभ काम का सम्पादन हो सकता है। वास्तव में हमारे दुष्कर्म भी बिना ज्ञान के नहीं होते। हम पहले किसी वस्तु को जानते हैं तब उसे करते हैं। इसलिए संसार के सभी देश तथा जातियों के लोग ज्ञानोपलब्धि की महिमा को स्वीकार करते हैं। परंतु एक बात है जिसमें सब लोग सहमत नहीं हैं। वह है ईश्वर की सहायता की आवश्यक्ता। नास्तिकों को अपने ज्ञान पर इतना भरोसा होता है कि वह ईश्वर की सहायता को अनावश्यक समझते हैं। पाश्चात्य देशों में ईश्वर का बहिष्कार कर दिया परंतु हम को किसी भी प्रकार की हानि नहीं हुई। यह बात कहां तक यथार्थ है। इसको यूरोप के विद्वान ही मानने लगे कि उनको अपना समस्थ पुरुषार्थ कुछ अधूरा प्रतीत होता है।

प्रत्येक कार्य में ईश्वर की आवश्यकता है। जब हम किसी शुभ काम को करने बैठें तो क्यों पहले ईश्वर का नाम ले लें। क्यों उससे सहायता की प्रार्थना करें। क्या आवश्यकता है कि हम प्रारंभ में कहें ''हे प्रभु हम निर्बल हैं। हम को इस कार्य में सहायता दीजिए। क्या यह ढकोसला या आडंबर मात्र नहीं है। क्या नास्तिकों के सभी काम बिगड़ जाते हैं। क्या बहुधा ऐसा देखने में नहीं आता कि नास्तिकों ने आस्तिकों की अपेक्षा अधिक सहायता प्राप्त की ओर आस्तिक लोग ईश्वर–ईश्वर जपते ही रह गए।

हाँ, यह हुआ तो अवश्य, यदि हिन्दू धर्म को आस्तिक कहें तो जिस समय सोमनाथ के पुजारी अपने शिव से प्रार्थना करते रहे उतनी देर में महमूद गजनवी ने मन्दिरों को तोड़ फोड़कर आस्तिक पुजारियों को तहस–नहस कर दिया। यदि मुसलमानी धर्म को आस्तिक कहें तो बहुत सी लड़ाईयों में ये अल्लाह–अल्लाह ही करते रह गए। और इनके शत्रुओं ने इन पर विजय प्राप्त कर ली।

फिर वेद क्यों कहता है कि ईश्वर की सहायता के बिना किसी विद्वान का कार्य भी नहीं चलता। वेद मंत्र में, ''विपश्चितः चन'' ऐसा शब्द आया है। ''चन'' का अर्थ है कि कोई भी नहीं। तात्पर्य यह है कि अविद्वान तो कोई कार्य कर ही नहीं सकता किंतु इसके साथ–साथ विद्वान को भी ईश्वर की सहायता आवश्यक होती है। इससे ईश्वर की सहायता का होना अनिवार्य माना गया है। यह आस्तिकता की पराकाष्ठा है। इसमें आस्तिक होने के महत्त्व की ओर संकेत है। आस्तिक्ता केवल मन समझाने के लिए नहीं है। किन्तु प्रत्येक शुभ कार्य के लिए आवश्यक है ऐसा क्यों? इस पर विचार कीजिए।

अवलम्बंन करता है सृष्टि के भिन्न–भिन्न नियम भिन्न–भिन्न विभागों में काम कर रहे हैं। यदि आपने उनको समझ लिया और उनके साथ चल पड़े आप अपने मनोरथ को प्राप्त हो जाएँगे। इस का मोटा दृष्टांत यह लीजिए।

रेलवे स्टेशन के एक ही स्थान से भिन्न–भिन्न दिशाओं में भिन्न–भिन्न गाड़ियाँ जाती हैं। प्रयाग से एक गाड़ी कलकता को एक दिल्ली को, एक जबलपुर को एक लखनऊ को जाती है। यदि आपको इसका यथार्थ ज्ञान हो जाए तो जहाँ पहुँचना है वहाँ का टिकट लेकर गाड़ी में बैठ जाइए। रेल के नियमों का जानना और उसके अनुकूल करना ही आप के यज्ञ सिद्धि का उपाय है। रेल का एक अध्यक्ष है। उस अध्यक्ष को न जानते

इसी प्रकार आस्तिकता और खुशामद में भेद है। बहुत से आस्तिक नामधारियों ने यह समझ रखा है यदि किसी मंदिर, मस्जिद या गिरजे में या अन्य पवित्र कहलाए जाने वाले स्थान में खड़े होकर ईश्वर की बड़ी प्रशंसाएँ कर देंगें तो ईश्वर हमारे कामों की अवश्यमेव सिद्धि कर देगा। परंतु तत्त्व तो यह है कि लाखों इस प्रकार के खुशामदी ''ईश्वर ईश्वर' चिल्लाते रहते हैं और उन का कार्य सिद्धि नहीं होता उन को हताश होकर यही कहना पड़ता है कि न जाने ईश्वर हमारी प्रार्थना को क्यों नहीं सुनता।

वेद मंत्र में शब्द 'यज्ञ' आया है। वेद मंत्र यह नहीं कहता कि ईश्वर के भरोसे के बिना यज्ञ सिद्ध नहीं होता। वेद कहता है कि ''यस्माद ऋते'' अर्थात् जिस ईश्वर के बिना शुभ कार्य सिद्ध नहीं होता। इस का तात्पर्य यह है कि चाहे तुम ईश्वर को मानो या न मानो, चाहे उस पर विश्वास करो या न करो। चाहे उससे सहायता माँगो या न माँगो, परंतु एक बात अवश्य है। वह यह है कि जितने शुभ काम संसार में होते हैं। वह ईश्वर की ही सहायता से होते हैं। ईश्वर बिना माँगे भी सहायता करता है अगर कार्य शुभ हो तो और माँगने पर भी सहायता नहीं करता यदि काम शुभ न हो। यही कारण है कि हम सहायता के लिए हाथ पसारे ही बैठे रहते हैं और ईश्वर हमारे शत्रु को विजयी कर देता है। मंत्र का दूसरा भाग इसको स्पष्ट कर देता है। ''सधीनां योगम् इन्वति''। वह बुद्धियों के योग में व्यापक है 'ईश्वर की सब बुद्धियों में व्यापकता बताई गई है। बुद्धि क्या है? बुद्धि वह शक्ति है जो सृष्टि के नियम में ओत–प्रोत है। बुद्धिमान वही है जो इस नियम को समझता है और उसका

हों या उसके समक्ष नतमस्तक न होते हों। परंतु इतना जानना तो आवश्यक है कि यह रेल का नियम है यदि आप इस नियम के विरूद्ध करें तो प्रार्थना करने और हाथ पैर जोड़ने पर भी आप अपने अभीष्ट की पूर्ति नहीं कर सकते। कल्पना कीजिए कि आप लाहौर जाने वाली गाड़ी में बैठ गए और रेल के समस्त अध्यक्षों और कर्मचारियों के प्रार्थी हुए कि हम किसी प्रकार कोलकाता पहुँच जाएँ तो क्या नतीजा। आप जोर से चिल्लाऐं कोई फल निकलने का नहीं और निकले भी क्यों? नियम पालन और खुशामद में तो भेद है। क्या रेल का अध्यक्ष यह नहीं कहेगा कि हम खुशामद नहीं मान सकते हम को तो नियम का पालन चाहिए।

इसी प्रकार आस्तिकता और खुशामद में भेद है। बहुत से आस्तिक नामधारियों ने यह समझ रखा है यदि किसी मंदिर, मस्जिद या गिरजे में या अन्य पवित्र कहलाए जाने वाले स्थान में खड़े होकर ईश्वर की बड़ी प्रशंसाएँ कर देंगें तो ईश्वर हमारे कामों की अवश्यमेव सिद्धि कर देगा। परंतु तत्त्व तो यह है कि लाखों इस प्रकार के खुशामदी ''ईश्वर ईश्वर' चिल्लाते रहते हैं और उन का कार्य सिद्धि नहीं होता उन को हताश होकर यही कहना पड़ता है कि न जाने ईश्वर हमारी प्रार्थना को क्यों नहीं सुनता।

वेद कहता है कि ईश्वर सब बुद्धियों में ओत–प्रोत है। यह जो कुछ हो रहा है वह ईश्वर ही कर रहा है। रेल के अध्यक्ष के समान। रेल के अध्यक्ष का मस्तिष्क रेल के समस्त कार्यों में ओत–प्रोत है। रेल का अध्यक्ष रेल की प्रत्येक गति में व्यापक है। तब ही तो रेल अच्छी तरह चल रही है जिस कार्य में अध्यक्ष का मस्तिष्क व्यापक न रह सका उसी में विघ्न या बाधा पड़ जाती है। उसी प्रकार ईश्वर भी संसार के सभी नियमों में व्यापक है। जो काम आप नियमों के अनुकूल करते हैं। वह शुभ है। अतः वह ईश्वर के सहारे ही चल रहा है।

रेल में चलने वाला बच्चा नहीं समझता कि रेल का अध्यक्ष रेल को क्यों कर चलाता है। परंतु वह चलता अवश्य है। इसी प्रकार मूर्ख नहीं जानता कि उसके शुभ कार्य में ईश्वर का कितना हाथ है। कभी विद्वान भी समझता है कि मैं अमुक काम बिना ईश्वर की सहायता के कर रहा हूँ। परंतु यह उस विद्वान की भूल है। यदि ईश्वर नियमों के विरुद्ध करें तो वह विद्वान भी कभी सफल नहीं हो सकता। इसलिए विद्वान पहले ईश्वर को जानने की चेष्टा करता है। फिर उसके अनुकूल आचरण करता है।

अब प्रश्न यह है कि यदि ईश्वर को खुशामद की आवश्यकता नहीं है तो वेद ने हमें यह बात बताई ही क्यों कि बिना ईश्वर के कोई काम सिद्ध नहीं होता? वस्तुतः इस की आवश्यकता थी, सिद्धि दो प्रकार की होती है एक अधूरी, दूसरी पूरी। बच्चा इतना जानता है कि रेल का टिकट लेकर रेल में बैठ जाओ पहुँच जाओगे। दूसरा विद्वान रेल के अध्यक्ष की समस्त व्यापकता का अनुभव करता है। क्या इन दोनों में भेद नहीं? माना कि दोनों ही अभीष्ट स्थान पर पहुँचगे परंतु जो रेल के अध्यक्ष की अध्यक्षता को समझेगा वह पूरी तरह सफल होगा। उसके अनेक अन्य कार्य भी सिद्ध हो सकेंगे। इसलिए विद्वान को जानना चाहिए कि मेरा कार्य बिना ईश्वर के पूरा नहीं हो सकता। वेद कहता है कि ईश्वर बुद्धियों में ओत–प्रोत है। अतः उसके बिना कोई शुभ कार्य नहीं हो सकता। रहा अशुभ काम उसका तो होना ही सम्भव नहीं, अतः उसके लिए प्रार्थना व्यर्थ। इत्योम्

आर्य नगर, दिमौली
पत्रालय–महीउद्दीनपुर
जनपद, मेरठ–उ.प्र.–250205

www.thearyasamaj.org

आर्य समाज और अन्तर्जातीय विवाह- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

● अर्जुन देव चड्ढा

मानव-जीवन के चार स्तंभों में गृहस्थ-जीवन का द्वितीय स्थान है। अन्य तीन आश्रम भी इस पर आश्रित हैं। यह एक उत्तरदायित्वपूर्ण आश्रम है। इसी आश्रम में रहते हुए मानव सन्तानोपत्ति से लेकर पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, विवाह आदि समस्त दायित्वों को पूर्ण करता है। इन दायित्वों में सबसे महत्त्वपूर्ण है-विवाह।यह ऐसा उत्तरदायित्व है जो दो आत्माओं के मिलन का संयोग बैठाता है। न बैठ पाने के कारण अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस दायित्व के निर्वहन का जिक्र सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में किया है। उन्होने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करने का निर्देश दिया है।

जहाँ वर्ण है वहाँ जन्मना जाति नहीं। सत्यार्थ प्रकाश बल देता है कि विवाह गुण, कर्म, स्वाभावानुसार होने चाहिए। यदि इस तथ्य पर विचार किया जाए तो पता चलेगा कि आर्यसमाजेतर समाजों में विवाह को लेकर अनेक कठिनाईयाँ है। जैसे-जन्मकुंडली का मिलन, मंगला-मंगली का चक्कर, शिक्षा व रोजगार समस्या, खानपान, रहन-सहन, पारिवारिक स्थितियाँ आदि।यद्यपि आज लड़कियों का अनुपात लड़कों से कम है फिर भी लड़की वाले बहुत परेशान हैं। आर्यसमाजेतर लोग एक सीमित दायरे में बँधकर, जन्मपत्री मिलाकर अनमेल विवाह कर डालते हैं जिसका परिणाम होता है आजीवन संघर्ष। इस समस्या से आर्य समाज के लोग भी नही बच पाते। वे सभी जन्मना जाति के प्रभाव में लड़के-लड़कियों का विवाह स्वाजाति में करते हैं जिससे अनेक समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। आर्य समाजी परिवार की लड़की आर्यसमाजेतर परिवार में जाकर पूरा पौराणिक बन जाती है। यदि वह परिवार मांसाहारी है तो वह उससे भी नहीं बच पाती है। यदि आर्य समाजी परिवार में आर्यसमाजेतर परिवार की लड़की आती है तो आर्य सिद्धान्तों व संस्कारों के अभाव के कारण समायोजन करने में कठिनाई का अनुभव करती है। इससे परिवार में संघर्ष उत्पन्न होता है।

जिनके घरों में युवा लड़के या लड़कियाँ है उनके माता पिता से उनके विवाह सम्बन्धी कठिनाई का पता किया जा सकता है। लड़कियाँ 35-38-40 साल की हो जाती हैं। अच्छे वर ढूँढ़ने के चक्कर में उम्र समाप्त हो जाती है। यही हाल लड़को में भी मिल जाएगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्पष्ट लिखा है कि 24 वर्ष तक कन्या का विवाह अवश्य हो जाना चाहिए।

एक तरफ ऐसा स्पष्ट निर्देश और दूसरी तरफ -

उन्होंने उल्लेख किया है - ''चाहे लड़का-लड़की मरणपर्यन्त कुमार रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरूद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिए।''जब लोग जाति के दायरे मे सीमित रहेंगे तो निश्चित ही कठिनाईयाँ बढ़ेंगी। ऐसे में युवा-युवती का मन दूषित हो सकता है।

इस दिशा में विगत चार सालों से दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा किया जा रहा युवक-युवती परिचय सम्मेलन एक सराहनीय कदम है। पाँचवाँ युवक-युवती सम्मेलन दिल्ली में जुलाई के प्रथम सप्ताह में होने जा रहा है। आर्य समाज के लोग यदि इस दिशा में सहयोग करें तो बहुत कुछ लड़के-लड़कियों के विवाह से संबंधित कठिनाई दूर हो सकती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के शब्दों पर विचार करें - ''सज्जन लोग स्वंयवर विवाह किया करें। सो विवाह वर्णानुक्रम से करें और वर्णव्यवस्था भी गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए।'' स.प्र.।4। ऋषि के शब्दों में कितनी कल्याण भावना है। वे वर्णव्यवस्था के कितने समर्थक हैं उन्हीं के शब्दों में - ''रज वीर्य के योग से ब्राह्मण शरीर नहीं होता।'' म.प्र.।4। वे लड़का-लड़की के गुण-कर्म-स्वभाव के मेल पर बल देते हैं। उन्हीं के शब्दों में, ''जब स्त्री-पुरूष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिणाम आदि यथायोग्य होना चाहिए। जब तक इनका मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता।'' स.प्र.।4। इतना ही नहीं उन्होंने विवाह सम्बन्ध दूर करने पर बल दिया है। दूरस्थ विवाह में प्रेम की डोरी बढ़ी रहती है। दोनों पक्ष के लोग एक-दूसरे के गुणावगुणों से अनभिज्ञ रहते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती के शब्दों में ''दूरस्थों के विवाह में दूर-दूर प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है निकटस्थ विवाह में नही।'' स.प्र.।4। खानपान, जलवायु, आदि की दृष्टि से भी दूरस्थ विवाह उत्तम है। महर्षि जी के शब्दों में, ''दूर देशस्थों के विवाह होने में उत्तमता है।'' स.प्र.।4।हम आर्य समाज के लोग ऋषि की भावनाओं और उनकी कल्याण-कामना को समझें। आज विवाह की समस्या इतनी विकट होती जा रही है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।इसका समाधान अन्तर्जातीय विवाह से ही सम्भव है जो गुण, कर्म, स्वभाव से गृहीत है। यदि अपनी जाति में विवाह होने पर पति-पत्नी में संघर्ष है वह अच्छा है या अन्तर्जातीय विवाह में गुण, कर्म, स्वभावानुसार सुखभोग अच्छा है? विपरीत स्वभाव वालों में विवाह का सर्वथा निषेध है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में ''कन्या को मरने तक चाहे वैसी ही कुमारी रखो, परन्तु बुरे मनुष्य के साथ विवाह न करो। ''उपदेश मंजरी'' ।।3।।

इस दिशा में हम आर्य समाज के लोग सक्रिय कदम नहीं उठा पा रहें है व दु:ख झेल रहें है। विरोधाभास साक्षात् देख रहे हैं पर साहस नहीं कर पा रहे हैं। हमारा आर्य समाज एक परिवार है। हम एक दूसरे से भावनात्मक सम्बन्ध से जुड़े हुए हैं। केवल कथनमात्र से कुछ नहीं होता। हमारा कार्य दूसरों के लिए बहुत बड़ा उपदेश है। आचरण और कर्म की भाषा मौन उपदेश देती है जो बहुत प्रभावकारी होती है। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के द्वारा उठाया जा रहा यह कदम निश्चय ही भविष्य में अच्छा परिणाम देगा। रोटी और बेटी का सम्बन्ध आर्य समाज के लिए सुखद भविष्य है। इससे हमारा दायरा विस्तृत होगा। हम एक-दूसरे के निकट आएँगे। हमें संस्कारित लड़के-लड़कियाँ मिलेंगीं। परिवार में सुख-शान्ति हो-इसके अलावा और क्या चाहिए? हमारी जाति आर्य, हमारा धर्म-वैदिक, हमारा राष्ट्र आर्यावर्त, हमारा नाम आर्य, हमारा उपास्य, देव ओ३म्-यही तो हमारी पहचान है, इसे बनाना है। यदि हम लोग परस्पर लड़के-लड़कियों का विवाह करना प्रारम्भ कर दें तो देश में आमूलचूल परिवर्तन आएगा और जन्मना जाति-पाँति मिट जाएगी। इसे मिटाना अति आवश्यक है अन्यथा हम परस्पर विभक्त होते जाएँगे और हमारी राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ जाएगी। इसके लिए अन्तर्जातीय विवाह एक सशक्त माध्यम है।

आर्यसमाज आर्यों का समाज है। हम अपने समाज में विवाह सम्बन्ध करें। इससे रूढ़ियाँ, दिखावा समाप्त होगा, योग्य लड़के-लड़कियों का दायरा बढ़ेगा तो विवाह संबंधी समस्या स्वत: समाप्त हो जाएगी, अमीरी-गरीबी की खाई पटेगी, हमारा परिवार बड़ा होगा, अच्छे सम्बन्धों से मन में प्रसन्नता बढ़ेगी। गृहस्थ जीवन स्वर्ग के समान होगा। गुरूकुलों के आचार्य/आचार्या से निवेदन है कि वे गुरूकुल के स्नातक/स्नातिका का ऐसा सम्बन्ध बनाएँ जिससे गुरूकुल के लड़के-लड़कियों में परस्पर विवाह संबंध हो सके। वे इस दिशा में मुख्य भूमिका निभा सकते हैं। विवाह में विचारों का मेल परमावश्यक है। यदि गुरूकुलीय शिक्षा प्राप्त युवक का विवाह कान्वेंट या विद्यालय से शिक्षा प्राप्त पौराणिक लड़की से विवाह होता है तो उसके जीवन में संघर्ष होगा। इसी प्रकार गुरूकुल से शिक्षा प्राप्त लड़की का विवाह यदि कान्वेंट/विद्यालय से शिक्षा प्राप्त लड़के से होगा तो उसके भी जीवन में संघर्ष होगा। कारण यह है कि गुण, कर्म, स्वभाव मेल नहीं खाती है। वैदिक विचारधारा मेल नहीं खाता है। वैदिक विचारधारा का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हो, इसलिए यह विवाह-सम्बन्ध वैदिक विचारों के अनुरूप होना चाहिए।

आर्य समाज को आदर्श समाज बनाएँ। योग्य स्त्री-पुरूषों से योग्य आदर्श समाज बनेगा जिसका माध्यम अन्तर्जातीय विवाह है। मेरे सामने कितने अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न हुए हैं और वे युवक-युवती सुखद जीवन व्यतीत कर रहे है। और कितने ऐसे जातीय विवाह हुए हैं जिनके मध्य संघर्ष है। जन्मकुंडली, मंगली-मंगला, राशि, गृह, मुहूर्त, शुभवाद, अच्छा-बुरा दिन, नाड़ी-मेल सबको तिलांजलि देकर समाज के समक्ष सत्य को प्रतिष्ठापित करना होगा। यह युग की माँग है।

जिसके भी घर में विवाह योग्य लड़के-लड़कियाँ हैं वे परिचय-सम्मेलन हेतु रजिस्ट्रेशन अवश्य करावें। इससे योग्य लड़के-लड़कियों का प्रमिलन होगा। यदि सम्मेलन में नहीं जा सकते तो कम-से-कम बायोडाटा भेजकर वैवाहिक पुस्तिका द्वारा संपर्क स्थापित कर सकते हैं। यदि हम महर्षि दयानन्द के मिशन को आगे बढ़ाना चाहते हैं तो अन्तर्जातीय विवाह को स्वीकार करना होगा। इससे एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रांति आएगी।

प्रधान, जिला आर्य प्रतिनिधि सभा, कोटा

www.thearyasamaj.org

ऋषि दयानन्द की दृष्टि में वेद और अपरा परा विद्या

● डॉ. सहदेव वर्मा

ऋषि दयानन्द ने वेदों को सब सत्य विद्याओं की पुस्तक मानकार उनका गहन मंथन किया था, तथा अपरा एवं परा विद्या के संबंध में जो वेदों के प्राचीन टीकाकारों ने भ्रान्तियाँ उत्पन्न की थीं। उनका बौद्धिक तथा तार्किक ढंग से निराकरण करते हुए वास्तविकता को उजागर किया है। ऋषि की दृष्टि से वेदों में दो विद्या हैं, एक अपरा दूसरी परा। इनमें से अपरा वह है कि जिससे पृथ्वी और तृण से लेकर प्रकृति पर्यन्त पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक–ठीक कार्य सिद्ध करना होता है, और दूसरी परा जिससे सर्वशक्तिमान ब्रह्म की यथावत् प्राप्ति होती है। यह परा विद्या अपरा विद्या से अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि अपरा का ही उत्तम फल परा विद्या है'। (दे.भा.भू. वेद विषय) इन्हीं विचारों का प्रतिपादन सांख्य तथा वेदान्त आदि ग्रन्थों में भी किया गया है।

परिणामतः जिस (विद्या से) ब्रह्म का ज्ञान होता है वही परा विद्या है। वेदों में ब्रह्म का प्रतिपादन ही नहीं किया गया है अपितु उसी में वेदों का तात्पर्य है। क्योंकि वही सब पदार्थों में प्रधान है। ऋषि का कथन है:– ''अत्रैव सर्वेषां वेदानां तात्पर्यमस्ति, ईश्ररस्य खुल सर्वे पदार्थेभ्यः प्रधानत्वात्।'' (वही) सायण आदि विद्वानों ने भी जो उपनिषदों को ब्रह्म विद्या का प्रतिपादक मानते हैं, उनका भी यह कथन है कि वेदों में ईश्वर का प्रतिपादन किया गया है।

''सर्ववेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।

ऋषि दयानन्द ने वेद भाष्य करते हुए तथा अन्य स्थानों पर भी वेद मंत्रों की ईश्वरपरक व्याख्याएँ की हैं। उन्होंने जहाँ पारमार्थिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार के अर्थ किए हैं, वहाँ तो ईश्वर का प्रतिपादन स्पष्ट है ही। परन्तु यदि कहीं उन्होंने पारमार्थिक अर्थ नहीं भी किए, वहाँ भी यह न समझना चाहिए कि ईश्वर से उन मंत्रों का संबंध नहीं है। तात्पर्य यह है कि सभी मंत्रों का भाव ईश्वर के प्रतिपादन में ही है। यदि कोई मंत्र सृष्टि की उत्पत्ति या किसी संसार स्थित पदार्थ का वर्णन करता है तो वहाँ भी निमित्त कारणों के रूप में ईश्वर का संबंध है है। ऋषि ने स्वयं लिखा है ''इस वेद– भाष्य में जिस वेद मंत्र के पारमार्थिक और व्यावहारिक दोनों अर्थ श्लेष अलंकार आदि के द्वारा सप्रमाण संभव होंगे उस उस के दोनों अर्थ किए जाएँगे। किन्तु ईश्वर का एक भी मंत्र के अर्थ में अत्यंत त्याग नहीं होता, क्योंकि निमित्त कारण ईश्वर इस कार्य जगत के सभी अंगों में व्याप्त है। तथा कार्य जगत का ईश्वर के साथ संबंध है। और जहाँ व्यावहारिक अर्थ होता है वहाँ भी ईश्वर की रचना के अनुकूल होने से ही सब पृथ्वी आदि द्रव्यों का सद्भाव होता है। इसी प्रकार पारमार्थिक अर्थ करने पर उसमें कार्य जगत का सम्बंध है, जिससे वह अर्थ भी आ जाता है।'' (दे.भा.भू.)

इस प्रकार वेदों में अपरा और परा दोनों विद्या व्यावहारिक अर्थ का प्रतिपाद्य विषय है, और परा विद्या पारमार्थिक अर्थ का। वेदों के विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान इन चारों काण्डों के द्वारा इन दोनों विद्याओं का वर्णन किया गया है। जैसा पहले भी इंगित किया गया है इनमें परा विद्या ही उत्कृष्ट है। ईश्वर ही वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। ''सर्वेषां वेदानामीश्वरे मुख्ये अर्थे मुख्यं तात्पर्यमस्ति।' (दे.भा. भू.)

इस प्रकार ऋषि दयानन्द की यह नवीन उद्भावना कही जा सकती है। सायणाचार्य के अनुसार भी धर्म और ब्रह्म दोनों वेद के प्रतिपाद्य विषय तो हैं, किन्तु वहाँ उपनिषदों को भी वेदों के अन्तर्गत मानकार ब्रह्म को विशेष रूप से उपनिषदों का विषय स्वीकार किया है। वेद मंत्रों के बहुत कम स्थानों पर ही सायण का ध्यान आध्यात्मिक अर्थ की ओर गया है इसके विपरीत ऋषि दयानन्द की दृष्टि में केवल वेद मंत्र–संहिताएँ ही वेद हैं। **''स्वतः प्रमाणभूता मंत्रभागसंहिताख्याश्चत्वार वेदाः उक्ताः।''** (वही वेद विषय)

उनमें अपरा और परा दोनों विद्याएँ हैं। यही नहीं वेद मंत्रों में ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है, अपितु ब्रह्म ही वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

'अर्थ वाचः पुष्प फलमाह याज्ञ दैवते पुष्प फले देवताध्यात्मे वा' निरुक्तके इस वचन का विश्लेषण करते हुए सायण कहते हैं– पूर्व–काण्डोक्त धर्म का ज्ञान उसी प्रकार वेद के उपदेश आदि से जो धर्म का ज्ञान होता है, वह अनुष्ठान द्वारा ब्रह्मज्ञान रूपी फल की इच्छा उत्पन्न करता है.... और जैसे फल तृप्ति का हेतु होता है वैसे ही वह भी –कृत्यता का हेतु होता है।

पूर्व काण्डोक्तस्य धर्मस्य ज्ञानं पुष्पम्।
उत्तर काण्डोक्तस्य ब्रह्मणो ज्ञानं फलम्।
यथा लोके पुष्पं फलस्योर्पादकं तथा वेदानुवचनादि धर्म ज्ञानमनुठान द्वारा फलात्मक ब्रह्मज्ञानेच्छां जनयति।
यथा च फलं तृप्ति हेतुस्तथा ब्रह्मज्ञानं कृतकृत्यत्व हेतुः। (दे.भा.भू.)

इसी प्रकार वेद के अनुबंध चतुष्टय का विचार करते हुए सायण ने कहा है– '' वेदे पूर्वोत्तर काण्डयो क्रमेण धर्मब्रह्मणी विषयः '' अर्थात् वेद में पूर्व काण्ड और उत्तर काण्ड के विषय क्रम से धर्म तथा ब्रह्म हैं। सायण ने अपने कथन की पुष्टि में शावर भाष्य तथा शंकर भाष्य का संदर्भ प्रस्तुत किया है।

सायण के मत में वेद–वेदांग सभी अपरा विद्या के अन्तर्गत हैं और उपनिषद् पर विद्या है, उनके मतानुसार वेद संहिता आदि का प्रतिपाद्य विषय धर्म है और उपनिषदों का विषय ब्रह्म। तदनुसार धर्म का अर्थ है– अनुष्ठान के अनन्तर उत्पन्न होने वाला अदृष्ट। अनुष्ठान का अभिप्राय है– यज्ञ आदि करना। इस प्रकार वेद का प्रतिपाद्य विषय यज्ञ आदि कर विधान है, और वेदार्थ ज्ञान यज्ञानुष्ठान के लिए आवश्यक है। 'अर्थ ज्ञानस्य तु यज्ञानुष्ठानार्थत्वात्।' (दे.भा.भू.)

इस विषय में ऋषि दयानंद की दृष्टि अत्यंत व्यापक है। उन्होंने सायण के मत का निराकरण करते हुए कहा है–' सायणाचार्य ने वेदों के सही अर्थ को नहीं जानकर कहा है कि सब वेद क्रियाकाण्ड का ही प्रतिपादन करते हैं, यह उनकी बात मिथ्या है।' ऋषि मे मतानुसार वेद के अवयव रूप विषय तो अनेक हैं, परन्तु उनमें से चार मुख्य हैं– विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान। (भा. भू. वेद विषय)

अंत में ऋषि दयानन्द के कथन को उदधृत करके अपरा, परा विद्या के मूल को स्पष्ट करते हैं: वेदों में केवल अपरा विद्या ही नहीं है अपितु परा विद्या भी है। इनमें से अपरा वह है कि जिससे पृथिवी और तृण से ले के प्रकृति पर्यन्त पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक–ठीक कार्य सिद्ध करना होता है, और 'परा' जिससे सर्व शक्तिमान ब्रह्म की यथावत् प्राप्ति होती है। यह परा विद्या अपरा विद्या से अत्यन्त उत्तम है– क्योंकि अपरा का ही उत्तम फल परा विद्या है।' (दे.भा.भू. विषय)

24/4 बिशन स्वरूप कालोनी
पानीपत–132103
दूरभाष: 0180–2643700

आर्य वेदोद्धारक ऋषि दयानन्द

● **हरिश्चन्द्र वर्मा वैदिक**

जिस समय भारत अविद्या अन्धकार के कुसंस्कारों से जकड़ा हुआ था और धर्म के सत्यार्थ से बिल्कुल अनिभज्ञ था, ठीक उसी समय सन् 1824 में ऋषि दयानन्द का आविर्भाव हुआ।

जब वे 14 वर्ष के हुए तभी से उनमें सत्य और असत्य को जानने के लिए विचार उत्पन्न हो गया। (यह उनका पूर्व जन्म का ही संस्कार था) जो शिवरात्रि के दिन शिवालय में रात को शिव के ऊपर मूषकों का उछल कूद देखकर एक प्रश्न उत्पन्न हो गया कि क्या यही शिवजी हैं? इस घटना को देखकर उन्हें बोध हो गया कि यह पत्थर सच्चे शिव नहीं हो सकते है। अतः सच्चे शिव की खोज में अपने पिता–माता के माया–ममता को छोड़ निकल पड़े तीर्थ स्थानों में एक से एक साधु–सन्तों से मिलते रहे परन्तु उनका शंकाओं का समाधान कोई न कर सका सका। आखिरकार सत्य की खोज में भटकते हुए को ईश्वरीय दैवी प्रेरणा ने उनको सच्चे गुरु के पास पहुँचा ही दिया।

जब स्वामी दयानन्द विद्यार्थी बनकर गुरु विरजानन्द की कुटिया में पहुँचे तब गुरू जी ने कहा तुम कौन हो? दयानन्द जी बोले सही तो मैं जानने आया हूँ कि मैं कौन हूँ? गुरू जी बोले तुम्हारे पास जो भी पुस्तकें हैं उन सबको विसर्जन कर दो दयानन्द ने वही किया। गुरुजी ने उनके व्यवहार से प्रसन्न होकर उन्हें शिक्षा के लिए कुटिया में शरण दी। वे गुरु विरजानन्द से 'अष्टाध्यायी, निरूक्त निघण्टु आदि वैदिक व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करने लगे और शास्त्रों का भी अध्ययन करते रहे।

जब शिक्षा पूर्ण हो गई तब गुरुदक्षिणा के समय स्वामी दयानन्द से गुरु विरजानन्द ने कहा कि देखो वेदों का अनर्थ किया गया है उसका सत्यार्थ प्रकट करो और समाज से कुरीतियों तथा कुसंस्कारों मे फँसे हुए लोगों का उद्धार करो, यही मेरे लिए गुरुदक्षिणा होगी। स्वामी दयानन्द ने गुरु आज्ञानुसार संकल्प किया कि ईश्वरीय ज्ञान वेद एवं सत्य शास्त्रों के अनुकूल धर्म की स्थापना करूँगा और फैले हुए पाखण्ड का खण्डन कर उन्हें सही मार्ग का दर्शन कराऊँगा।

इस प्रकार वैदिक धर्म का प्रचार के लिए भारत के हर राज्य में भ्रमण

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

www.thearyasamaj.org

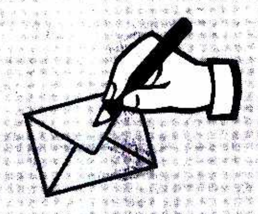

पत्र/कविता

यजन करते हैं तुम्हारा

ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।
(ऋ. 7-59-12)

मृत्युनाशक अमरत्व के संरक्षक क्रान्तदर्शी विभो !
मेरे परम प्रिय त्र्यम्बक देव, त्रिकालदर्शी विभो !!
श्रद्धाभाव से करुणामय तुम्हारा यजन करते हैं,
निष्कपट भाव से न्यायकारी हम भजन करते हैं।

आप दया कर संसार में सुष्ठ गन्ध की पुष्टि करते हैं,
धन-धान्य, फल-फूल देकर संसार की पुष्टि करते हैं।
हे रुद्र! केवल आप ही तीनों कालों के द्रष्टा हो,
उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के देव तुम अधिद्रष्टा हो।

तुम तीन लोकों की करुणामयी अम्बा माता हो,
कर्मफल दाता, एक-मात्र तुम ही भाग्यविधाता हो।
अपनी परम कृपा से हमारा भी भाग्योदय कर दे,
हमारे मनो से माता कष्टदायक मृत्यु का भय हर दे।

पका हुआ फल लता से मुक्त हो जाता है जिस तरह से,
हमारा धड़कता हृदय भी मुक्ति चाहता है उसी तरह से।
हमें अपनी अतुल सामर्थ्य से मृत्यु भय से मुक्त कर दे,
'चैतन्य' को अपने अमृतघट से हे दयामय संयुक्त कर दे।

महात्मा चैतन्यमुनि
महादेव, सुन्दर नगर -174401 (हि.प्र.)

मंदिर से भारी होता जा रहा है। टापू

साप्ताहिक 'आर्य जगत्' में भारतेन्दु सूद जी का लेख-'नास्तिक होना ही अच्छा है पढ़ा। विचार के यह बात स्पष्ट होती है कि सबसे बड़ा नास्तिक भारत वासी का धार्मिक मंच ही है। चीन देश में न कोई मजहब है, न काई मन्दिर न तीर्थ स्थान जहां जाकर डुबकी लगाकर लोग आत्महत्या करते हैं। भगवान की पूजा के नाम पर अस्सी लाख से ऊपर पंडे, पुजारी, आचार्य और ओंकार पंडित हैं जिनका पेट लोगों को ठगने से भरता है, धर्मिक जाल बिछायें बैठे हैं, सोच मे हैं कि कैसे लोगों को ठगा जाय। जितने भी भगवान को पाने के रास्ते बताने वाले लोग हैं उनका ध्यान भगवान पर नहीं।, महात्मा लोग आशा है उन्हें रामायण का ज्ञान होगा, रामचन्द्र जी को जानते होंगे, यह भी जानते होंगे कि श्री राम के समय भी भारत में कोई मंदिर नहीं था। मगर भगवान की पूजा होती थी। भगवान का मंदिर उनका मन ही था। बाहर भटकना नहीं पड़ता था। तो पंडे पुजारी लोग साधारण भक्तों को सही मंदिर की राह क्यों नहीं बताते? क्योंकि उनकी पेट पूजा बंद हो जायगी। जनता को अन्धेरे में रखने से ही उनका पेट भरता है, जीवन की गाड़ी चलती है। भक्त जाये भाड़ में। शिवजी की पूजा भी काफी होती है। महान् गायत्री के उपासक हिमालय के कैलास पर्वत के वासी थे। सही शिव को छोड़कर लिंग ही हाथ लगा है। उससे क्या कल्याण होगा। पहले भी लाखों मंदिर थे, लोगों को विश्वास था कि दुश्मन आक्रमण करेगा तो भगवान की मूर्ति मंदिर से निकलकर उनकी रक्षा करेगी मगर हुआ क्या, मंदिर टूटा, पंडित पुजारी पूजा के अरि (शत्रु) स्वयं मारे गये। समाज के साथ अपने को भी ठगते रहे।

हमारे छोटे से टापू में भी यह बीमारी आ गयी है। टापू मंदिर से भारी होता जा रहा है। हर गाँव में और किसी-किसी गांव में तो-दो मंदिर हैं। निर्माण करवाते हैं। और भगवान की मूर्तियों की स्थापना करवाते हैं। आकर्षक प्रतिमायें देखने लायक हैं। पुजारी सवेरे शाम उनकी सेवा में लगे रहते हैं। ताला खोलते हैं, घंटी बजाकर भगवान भी जगाते हैं। टायलेट ले जाते हैं, मुंह धुलाते हैं स्थान करवाते हैं। फिर फल-फूल और प्रसाद से उनकी सेवा में लग जाते हैं और विचौलिया बनकर अन्य भक्तों को भगवान् से परिचय करवाते हैं। सिफारिश करते हैं कि भक्त का कल्याण कर दें। स्वयं पंडित जी का कल्याण होने से रहा' जनता का कल्याण क्या होगा। अंधेरे के राही और कहाँ तक भटकेंगे। भारतेन्दु जी के लेख को सभी को पढ़ना चाहिए । उनका धन्यवाद है।

सोनालाल नेमधारी
कारोलिन, बेल-एर
मोरिशस

****

स्त्री शिक्षा, स्वदेशी भाषा और संस्कार प्रदान करते डी.ए.वी. तथा गुरुकुल

पराधीन भारत में महिलाओं को शिक्षा देने का किसी के मन में विचार नहीं था जब महर्षि दयानन्द ने महिलाओं को शिक्षित करने तथा उनका मान बढ़ाने की बात कही थी। उस समय जनता भी महिलाओं को शिक्षित करने की विरोधी थी परन्तु आर्य समाज ने महिलाओं के लिये भी स्कूल खोले तथा सर्व प्रथम जालन्धर नगर में कन्या महाविद्यालय खोला। इस तरह महिलाओं को भी पुरुषों के बरावर अधिकार दिये गये। अब महिलायें हर क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी कर रही हैं।

आर्य समाज के दूसरे बडे नेता महात्मा मुंशी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने महर्षि दयानन्द के निदेशानुसार हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की जिसमें प्राचीन काल के गुरुकुलों की तरह वेद शास्त्रों की शिक्षा भी देने का प्रबन्ध था परन्तु शिक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा था। महर्षि दयानन्द किसी विदेशी भाषा को पढ़ाने के विरोधी नही थे परन्तु अपने देश की भाषायें हिन्दी सस्कृत पढ़ाना अनिवार्य समझते थे। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय बन चुका है तथा इस की डिग्रीयाँ-वेदालंकार तथा विद्यालंकार बी.ए.के बरावर मान्यता प्राप्त हैं। इस प्रकार देश भर में अनेक लड़कों और लड़कियों के अलग-अलग गुरुकुल खुले हुये हैं जिन में कम्पयूटर की शिक्षा भी दी जाती है और कई आधुनिक विषय भी पढ़ाये जाते हैं ताकि पढ़ाई के वाद बच्चे सरकारी नौकरी में भी जा सकें।

इन सब के अतिरिक्त आर्य समाजों ने कई नगरों में स्कूल कॉलेज खोल रखे हैं जो शिक्षा के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहे हैं। इन में बच्चों को नैतिक शिक्षा भी दी जाती है।

केन्द्रीय सरकार ने अब शिक्षा के अधिकार का कानून पास कर दिया है इसलिये सब लोगों को अपनी सन्तानों को शिक्षित करने के लिये स्कूलों में अवश्य भेजना चाहिये।

अभी भी देश में बहुत से लोग अनपढ भी है इस लिये आर्य समाज को रात्री के समय आर्य समाज मन्दिरों में प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र खोलने चाहियें।

जब से महात्मा आनन्द स्वामी के पौत्र डी.ए.वी. के प्रधान बने हैं उन्होंने डी.ए.वी की सस्थाओं में दैनिक हवन यज्ञ करना अनिवार्य कर दिया है इस से वायु मण्डल शुद्ध होता है और नैतिक शिक्षा से विद्यार्थियों को अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का ज्ञान होता है तथा अच्छे नागरिक बनते हैं।

अश्विनी कुमार पाठक
बी 4/256 सी केशवपुरम दिल्ली

****

www.thearyasamaj.org

क्षमा दान

● नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'

धीर वीर मनुष्यों के लिए क्षमादान सर्वश्रेष्ठ गुण है। बीती बातों को भूल कर जो समर्थवान व्यक्ति हिंसा का प्रतिकार लेने के लिए प्रतिहिंसा न करके क्षमा कर देता है उसे न्यायकर्ता ईश्वर की न्याय व्यवस्था में क्षमा रूपी पुण्य के लिए अच्छी नियति पुरस्कार स्वरूप प्राप्त होती है। वेसे भी हिंसा या अपने प्रति किसी के अपराध पर बदले की भावना रखते हुए प्रतिहिंसा करना पाशविक प्रवृति का पर्याय माना जाता है जबकि दण्ड देने की शक्ति होते हुए भी शत्रु द्वारा पश्चाताप कर लेने पर क्षमा कर देना मनुष्यों का दैवीय गुण कहलाता है। क्षमा की गौरव गाथा लिखते हुए महर्षि वेदव्यास जी ने कहा है–

क्षमां तेजस्विनां तेजः, क्षमा ब्रह्म तपस्विनाम्।
क्षमा सत्यं सत्यवतां, क्षमा यज्ञ क्षमा शमः।।

अर्थात् क्षमा तेजस्वी पुरुषों का तेज हैं, क्षमा तपस्वियों का ब्रह्म है, क्षमा सत्यवादी पुरुषों का सत्य है। क्षमा यज्ञ है और क्षमा मनोनिग्रह है। बदले की भावना की उपेक्षा क्षमा उत्तम स्वभाव का लक्षण है।

क्षमा के सिद्धांत को भली भांति समझने के लिए हमें महर्षि दयानन्द के जीवन में शिक्षा लेनी चाहिए। उन्होंनेअपने जीवन में कितनी बार उनको विष देने वालों को सदैव क्षमा कर दिया। यहां तक कि अपने प्राणहंता विष देने वाले रसोइये जगन्नाथ को भी क्षमा करते हुए धन देकर भाग जाने को कहा। इसे कहते हैं क्षमाशीलता। लेकिन अक्सर लोग क्षमा को कमज़ोरी या मूर्खता का पर्याय मान लेते हैं और फिर अपनी आसुरी प्रवृति को दिखाते हुए उनके प्रति अपराधों में संलग्न जाते हैं। शायद **'क्षमा वीरस्य भूषणम्'** कहकर क्षमाशीलता को धीर वीर पुरुषों का लक्षण बताया गया है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने इसका वर्णन कुछ इस प्रकार से किया है–

क्षमा शोभती उसी भुजंग को
जिसके पास गरल हो
वह क्या जो विषहीन दंतहीन सरल हो।

अपने अपराधों को जान मानकर प्रायश्चित रूपी पश्चाताप करने वाला अपराधी ही क्षमा का अधिकारी होता है। यदि कोई अपराधी अपनी हठधर्मिता वा दुष्ट आसुरी स्वभाव के कारण अपनी भूल को स्वीकार करे तो वह क्षमा का नहीं अपितु दंड का अधिकारी होता है। इसलिए महर्षि वेदव्यास ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा है अच्छी तरह जांच पड़ताल करने पर यदि यह सिद्ध हो जाये कि उससे वह वह अपराध अनजाने में हो गया है, वह दुर्बल मनुष्य है और वह अपने अपराध का पश्चाताप करता है तो वह आपकी क्षमा का अधिकारी है। क्षमा से इसी सिद्धांत की पुष्टि गुरू गोबिंद सिंह ने करते हुए कहा है "यदि कोई दुर्बल कमजोर तुम्हारा अपमान करे तो उसे क्षमा कर दो क्योंकि क्षमा करना वीरों का काम है। परन्तु यदि अपराधी हठधर्मी बलवान हो तो उसे दंड अवश्य दो।" जिसे पश्चाताप न हो उसे क्षमा कर देना पानी पर लकीर खींचने की भाँति निरर्थक है, अपितु हठधर्मी अपराधी को क्षमा करना उसके अपराधों को बढ़ावा देने के समान है।

क्षमा में जो महत्ता और औदार्य है वह क्रोध और प्रतिकार में नहीं। प्रतिहिंसा हिंसा पर आघात कर सकती है पर क्षमा उदारता पर नहीं। क्षमा मनुष्य का अलंकार है। इस जगत् में क्षमसा एक ऐसा वशीकरण मंत्र है जिससे मनुष्य दुश्मनों पर विजय पा सकता है। क्षमावान के लिए लोक परलोक दोनों है वह इस जगत् में सम्मान और परलोक में उत्तम गति पाते हैं। क्षमा दंड से बढ़कर है और क्षमा से बढ़कर और किसी बात में दुश्मन को जीतने की शक्ति नहीं है। क्षमाशीलता का पाठ पृथ्वी से सीखें, धरती को जितना खोदें वह गहराई से उतने रत्न, शीतल जल आदि प्रदान करते हुए सबका पालन पोषण और धारण करती है। यदि समाज में क्षमाशील पुरुष न हों तो मनुष्यों में कभी सन्धि नहीं हो सकती क्योंकि क्रोध तो झगड़े की जड़ है।

502 जी एच 27, सैक्टर 20
पंचकूला (09467608686)

☞ *पृष्ठ 9 का शेष*

आर्य वेदोद्धारक....

करते रहे और ''न तस्य प्रति मस्ति यस्य नाम महद्यशः'' के अनुसार मूर्तिपूजा, छूत–छात, पितृ श्राद्ध, पितर पक्ष, बालविवाह, गंगास्नान से मुक्ति, जन्मगत जाति का विरोध और अष्टांगयोग, यज्ञ, पितृ–श्रद्धा–सेवा, विधवा विवाह, जल से शरीर और सत्य से मन की पवित्रता और कर्मगत जाति का समर्थन करते हैं।

इसके अलावा ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद का भाष्य एवं ऋग्वेददिभाष्यभूमिका को लिखकर वेदों के भाष्य करने के नियम लिख दिए ताकि इस विद्या की पुस्तक को वैदिक व्याकरण के आधार पर और वेदों का भाष्य विद्वान जन कर सकें। सन् 1846 से 1863 तक का अन्वेषणकाल जिसमें उन्होंने सच्चे गुरु की खोज की और मथुरा नगरी में स्वामी विरजानन्द के चरणों में बैठकर विद्याध्ययन किया। उन्होंने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान तथा उसी को स्वतः प्रमाण माना और वेदादि सत्य शास्त्रों को ही मानव मात्र का धर्म तथा ईश्वर, जीव, प्रकृति को समझने के लिए उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना कर दी।

वास्तव में 'स.प्र.' एक ऐसी कसौटी के रूप में मान्य है जिसके द्वारा सारे मतों के रहस्यों को जाना जा सकता है और जो भी उसका निष्पक्ष रूप से अध्ययन करता है वह उसी का हो जाता है। तात्पर्य यह है कि वह ग्रन्थ लाखों करोड़ों लोगों को आर्य बना चुका है। 140 वर्षों से चल रहे 'स.प्र.' की रफ्तार को कोई भी मजहब

> **इसके अलावा ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद का भाष्य एवं ऋग्वेददिभाष्यभूमिका को लिखकर वेदों के भाष्य करने के नियम लिख दिए ताकि इस विद्या की पुस्तक को वैदिक व्याकरण के आधार पर और वेदों का भाष्य विद्वान जन कर सकें। सन् 1846 से 1863 तक का अन्वेषणकाल जिसमें उन्होंने सच्चे गुरु की खोज की और मथुरा नगरी में स्वामी विरजानन्द के चरणों में बैठकर विद्याध्ययन किया। उन्होंने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान तथा उसी को स्वतः प्रमाण माना और वेदादि सत्य शास्त्रों को ही मानव मात्र का धर्म तथा ईश्वर, जीव, प्रकृति को समझने के लिए उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना कर दी।**

वाला उसे रोक न सका। उसे जो भी अपना लेता है उसका जीवन बदल जाता है उसमें शुद्धता और पवित्रता आ जाती है। उसकी नास्तिकता मिट जाती है।

ऋषि ने अपने अल्प जीवन में मानव कल्याण के लिए क्या नहीं किया, यहाँ तक कि सत्य के समर्थन और बुरी आदतों को छुड़वाने में अपने प्राणों तक की आहुति दे दी। वैसे समाधि सिद्ध ऋषि लोग मरते नहीं है, केवल शरीर से उनका सम्बन्ध छूट जाता है, किन्तु उनका शुद्ध संस्कार मुक्ति में आत्मा के साथ ही रहता है, वे एक प्रकार के दिव्य प्रकाश में प्रवेश कर जाते हैं।

यदि ऋषि दयानन्द को विष न दिया गया होता, तो वे आज भी मौजूद रहकर हमारे संसार को आर्य बना चुके होते। किन्तु आज आर्य समाज में संयासी महात्माओं की कमियों से, अप्रचार से तथा अनेकता के कारण उसकी स्थिति बहुत सोचनीय है। उसका विस्तार कहाँ से होगा। वह पहले से और संकुचित होने लगा है। हमें तो ऐसा लगता है कि जब तक ऋषि भक्त विद्वज्जन हैं तभी तक वर्ष मे एक बार प्रचार होता है, और जब उनमें भी न्यूनता आ जाएगी तब आर्य समाज का क्या होगा जबकि आजकल आर्य परिवार में भी सभी आर्य नही होते। यदि पिता या भाई या बहू कोई एक या दो आर्य विचार का है तो अन्य सदस्य कोई पौराणिक कोई कृष्ण को तो कोई श्रीगणेश को कोई देवी को अपना इष्टदेव मानकर पूजा करते हैं। कोई मांसाहारी है तो कोई अमांसाहारी है।

अब मुसलमान को देखिए उनके हर परिवार इस्लाम के नियमों का पालन करते रहते हैं। उनकी सन्तानों से जब भी पूछिएगा कि नामाज कैसे अदा किया जाता है, बता देंगे, मजहब की पुस्तकों के नाम भी बता देंगे। किन्तु हिन्दुओं की सन्तानों से पूछिए कि आपके धर्म पुस्तकों का नाम क्या है? तो नहीं बता सकेंगे। आजकल आर्यों के प्रति जो इतिहास में लिखा गया है वही बताएँगे, जिसे विदेशी अंग्रेज ने लिखा था। अरे, उसमें तो हमारे आर्यावर्त के आर्य और ऋषियों के साहित्य को बरबाद करके रख दिया है।

मु.पो. मुरारई, जिला–वीरभूमि
(प.बंगाल) – 731219
मो. :– 8158078011

www.thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 25-26 /12/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

डी.ए.वी. देहरा (कांगड़ा) ने ग्रामीण क्षेत्र में किया वेद प्रचार

बालदिवस के अवसर पर डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल देहरा के प्राचार्य, अध्यापक वर्ग तथा विद्यार्थियों ने क्षेत्र के निकटवर्ती पंचायत क्षेत्र ग्राम 'बाड़ी' में जाकर वैदिक हवन का आयोजन किया। इस अवसर पर पंचायत प्रधान, सैक्रेटरी तथा गांव के गणमान्य सदस्य व नागरिक भी उपस्थित थे। सामूहिक हवनकार्य द्वारा वातावरण की शुद्धता व पवित्रता के साथ-साथ सारा परिवेश मंत्रगायन से गुंजायमानत हो गया। प्राचार्य महोदय ने यज्ञ कार्य के माध्यम से आर्य समाज के उद्देश्यों का उल्लेख किया। नैतिक मूल्यों पर प्रकाश डालने के साथ उन्होंने अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा व सुरक्षा हेतु अच्छे संस्कार विद्यार्थी-वर्ग में सिंचित करने पर बल दिया। पर्यावरण सुरक्षा व स्वच्छता पर विशेष प्रकाश डाला गया।

डी.ए.वी. अबोहर में हुआ आर्य युवा समाज का अधिवेशन

अबोहर में कार्यरत डी.ए.वी. शिक्षण संस्थानों के युवा संगठन आर्य युवा समाज का वार्षिक अधिवेशन डी.ए.वी. कालेज के सभागार में आयोजित किया गया। इस अधिवेशन में डी.ए.वी. कालेज, गोपीचन्द आर्य महिला कालेज, डी.ए.वी. सी.सै. स्कूल हरिपुरा के प्राचार्य, प्राध्यापक, अध्यापक, गैर अध्यापक वर्ग सभी तथा विद्यार्थियों ने भाग लिया।

उत्सव हवन यज्ञ से प्रारम्भ होकर प्रवचन तथा भजन के उपरान्त समाप्त हुआ। वैदिक मन्त्रोच्चारण तथा ज्योतिप्रज्ज्वलन के अनन्तर मैडम डॉ. वनीता सिंह ने सभी का स्वागत किया व डॉ. सुशीलरत्न मिगलानी ने आर्यसमाज के नियमों के बारे में चर्चा की। मुख्य वक्ता के रूप में श्रीगंगानगर से पधारे डॉ. गौर मोहन माथुर ने स्वामी दयानन्द के शिक्षा दर्शन पर सार गर्भित भाषण देकर सभी को मन्त्रमुग्ध किया। श्री रवि कुमार भटनागर ने सुखी जीवन जीने की कला के विषय पर स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों से उद्धरण देते हुए अपना वक्तव्य दिया।

समारोह में अधिक मनोरञ्जक व आकर्षक था भजनों की सुरीला संगम। डी.ए.वी. स्कूल के अध्यापक श्री दिल्लीप कुमार माथुर ने अपने विद्यार्थिवर्ग के साथ सुन्दर सुमधुर भजन पेश किये। गोपी चन्द आर्य महाविद्यालय के संगीत विभाग से प्रोफेसर श्रीमती सुरधनी व श्री संजीव शर्मा ने अपने समधुर कण्ठ से अनेक भजन प्रस्तुत कर समारोह को चारचाँद लगाए। अन्त में प्रचार्य डॉ. संजीव कुमार अरोड़ा ने सभी का धन्यवाद किया। इस अवसर पर अबोहर के अनेक गणमान्य महानुभावों ने समारोह में पधार कर आर्ययुवा समाज का उत्साह बढ़ाया। प्रसाद वितरण के साथ उत्सव का समापन हुआ।

डी.ए.वी. खेड़ा खुर्द की प्राचार्या हुईं सम्मानित

डीए.वी. पब्लिक स्कूल खेड़ा खुर्द, दिल्ली की प्रधानाचार्या श्रीमती देविका दत्त को 10 दिसंबर 2013 को चौदहवें विश्व मानवाधिकार सम्मेलन में मानवाधिकार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में योगदान देने हेतु पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस सम्मेलन का आयोजन मानवाधिकार शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थान के संरक्षण में इण्डिया इन्टरनैशनल सेन्टर, लोधी रोड, दिल्ली ने किया। श्रीमती दत्त को यह सम्मान प्राप्त करने पर बधाई दी गई।

सृष्टि ने बनाया डी.ए.वी. घुमारवीं को हिमाचल में सर्वश्रेष्ठ

राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला (बाल) धर्मशाला में आयोजित बाल विज्ञान सम्मेलन में डी.ए.वी. घुमारवीं की सृष्टि बजाज ने सर्वे रिपोर्ट (सीनियर वर्ग) में प्रथम स्थान प्राप्त कर विद्यालय को गौरवान्वित किया। सृष्टि ज्योत्सना तथा ईशानी की टीम ने इस सर्वे रिपोर्ट को बड़ी तन्मयता से पूरा किया। 27 दिसम्बर से 30 दिसम्बर तक राष्ट्रीय स्तर पर भोपाल में आयोजित होने वाले बाल-विज्ञान सम्मेलन में सृष्टि प्रदेश सर्वे टीम का प्रतिनिधित्व करेगी। श्वेत अनमोल ने सर्वे रिपोर्ट (सीनियर सैकेण्डरी वर्ग) में भाग लेकर प्रदेश में तीसरा स्थान प्राप्त किया। बच्चों ने अपनी सफलता का श्रेय अभिभावकों तथा अध्यापक-वर्ग को दिया। प्रधानाचार्य विनोद सरोच ने बच्चों, अध्यापकों तथा अभिभावकों को बधाई देते हुए उन्हें प्रेरणा दी कि कड़ी मेहनत कभी भी व्यर्थ नहीं जाती। बड़ी सोच, कड़ी मेहनत तथा व्यक्ति का पक्का इरादा उसे लक्ष्य तक पहुँचाता है।

आर्य समाज, रामनगर रुडकी में चारों वेदों का महायज्ञ

आर्य समाज, रामनगर रुडकी, जिला हरिद्वार, ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की पुण्य स्मृति में चारों वेदों का महायज्ञ किया गया।

इस यज्ञ के मुख्य यजमान सर्व श्री ऋषिपाल आर्य पत्नी सहित रहे। कार्यक्रम में मुख्य रूप से श्री सुमन्त सिंह जी आर्य ने महर्षि देव दयानन्द सरस्वती व ब्रह्म ऋषि कृष्णदत्त जी महाराज के जीवन चरित्र तथा उनके द्वारा चलायी गई आर्य समाजों की स्थापना पर प्रकाश डाला तथा उनकी जीवन में आयी विशेष घटनाओं का उल्लेख भी किया जिसका उपस्थित जनता पर काफी प्रभाव पड़ा।

इस कार्यक्रम में महिलाओं का भी विशेष योगदान रहा।

मुद्रक व प्रकाशक — **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू-30, ओखला, फेस-II, नई दिल्ली-110020 (दूरभाष 26388830-32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित। स्वामित्व — आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक — **श्री पूनम सूरी**